त्रैमासिक, मार्च-जून '97 • पन्द्रह रुपये

दायित्वबोध

उन बुद्धिजीवियों की पत्रिका जिन्होंने जनता का पक्ष चुना है

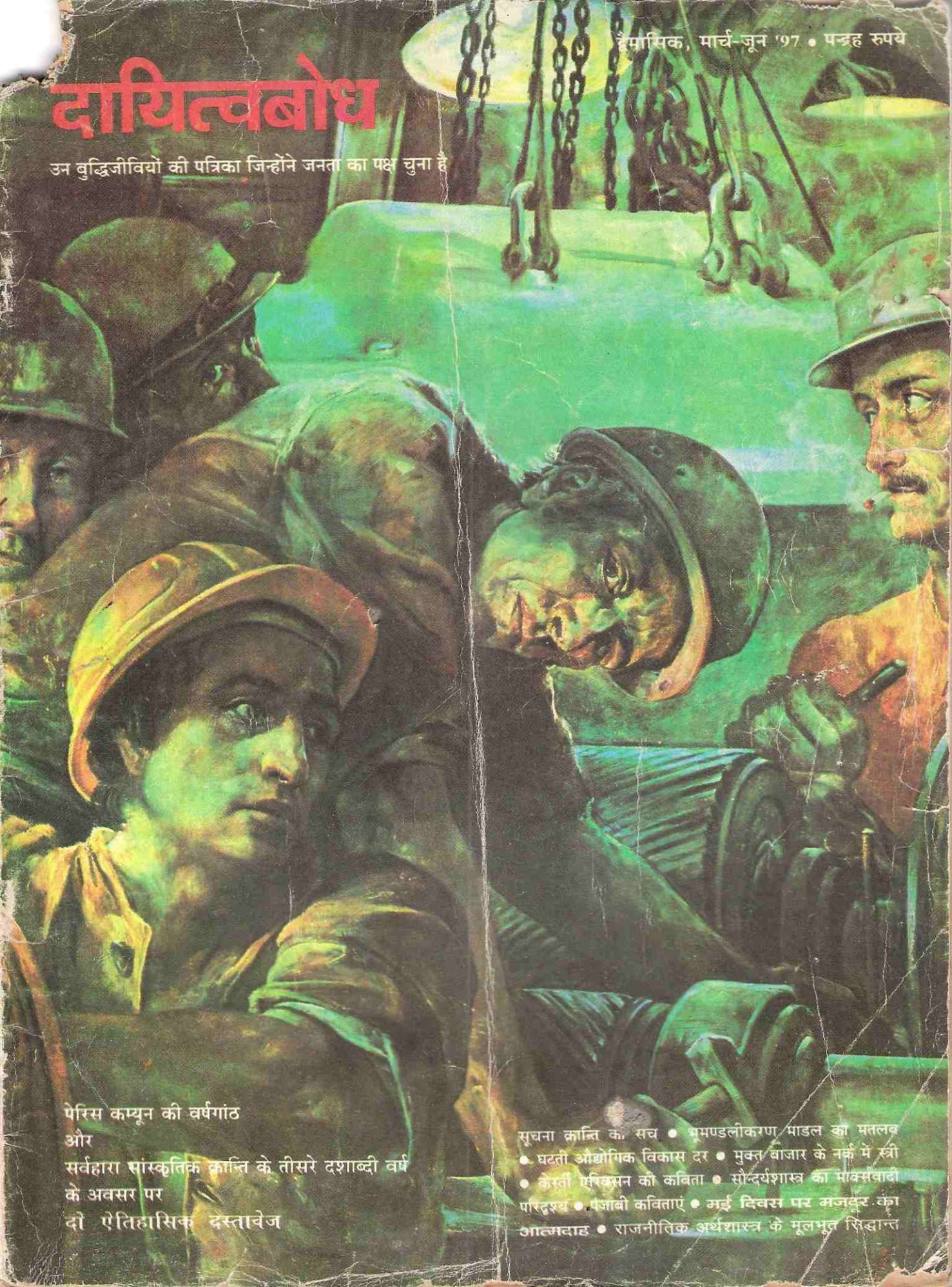

पेरिस कम्यून की वर्षगांठ
और
सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के तीसरे दशाब्दी वर्ष
के अवसर पर
दो ऐतिहासिक दस्तावेज

सूचना क्रान्ति का सच • भूमण्डलीकरण माडल का मतलब • घटती औद्योगिक विकास दर • मुक्त बाजार के नर्क में स्त्री • केरती परिवर्तन की कविता • सौन्दर्यशास्त्र का मार्क्सवादी परिदृश्य • पंजाबी कविताएं • मई दिवस पर मजदूर का आत्मदाह • राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त

कार्ल मार्क्स के जन्मदिवस (5 मई) के अवसर पर

"सत्ताधारी वर्ग के विचार हर युग में सत्ताधारी विचार हुआ करते हैं : अर्थात जो वर्ग समाज की सत्ताधारी भौतिक शक्ति होता है, वह साथ ही उसकी सत्ताधारी बौद्धिक शक्ति भी होता है। जिस वर्ग के पास भौतिक उत्पादन के साधन होते हैं, उसका साथ ही साथ बौद्धिक उत्पादन पर भी नियंत्रण रहता है, और इसतरह साधारणतया जिन लोगों के पास बौद्धिक उत्पादन के साधन नहीं होते, उनके विचार इस वर्ग के अधीन रखे जाते हैं। सत्ताधारी विचार प्रभुत्वशाली भौतिक सम्बन्धों की, यानी विचारों के रूप में ग्रहण किये जाने वाले प्रभुत्वशाली भौतिक सम्बन्धों की बौद्धिक अभिव्यक्ति के अलावा और कुछ नहीं होते; अतः वे उन सम्बन्धों की अभिव्यक्ति हैं, जो एक वर्ग को सत्ताधारी बनाते हैं; इसलिए वे उसके प्रभुत्व के विचार हुआ करते हैं।"

- मार्क्स और एंगेल्स
(जर्मन विचारधारा)

"मानवजन अपना इतिहास स्वयं बनाते हैं, पर अपने मनचाहे ढंग से नहीं। वे उसे अपनी मनचाही परिस्थितियों में नहीं, अपितु ऐसी परिस्थितियों में बनाते हैं, जो उन्हें अतीत से प्राप्त और अतीत द्वारा सम्प्रेषित होती हैं और जिनका उन्हें सीधे-सीधे सामना करना पड़ता है। सभी मृत पीढ़ियों की परम्परा जीवित मानव के मस्तिष्क पर एक दु:स्वप्न के समान सवार रहती है। और ठीक ऐसे समय, जब ऐसा लगने लगता है कि वे अपने को तथा अपने इर्द-गिर्द की सभी चीजों को क्रान्तिकारी रूप से बदल रहे हैं, और किसी ऐसी वस्तु का सृजन कर रहे हैं, जिसका आजतक अस्तित्व न था, क्रान्तिकारी संकट के ठीक ऐसे अवसरों पर वे अतीत के प्रेतों को अपनी सेवा के लिए उत्कण्ठापूर्वक बुलावा दे बैठते हैं और उनसे अतीत के नाम, अतीत के रणनाद और अतीत के परिधान मांगते हैं, ताकि विश्व इतिहास की नवीन रंगभूमि को इस चिरप्रतिष्ठापित वेश में और इस मांगी हुई भाषा में सजाकर पेश करें।"

- मार्क्स (लुई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर)

दायित्वबोध

संयुक्तांक

वर्ष–4 अंक -3-4 मार्च–जून 1997

प्रधान सम्पादक
विश्वनाथ मिश्र
सहायक सम्पादक
अरविन्द सिंह
संयुक्त सम्पादक
ओमप्रकाश सिन्हा
सत्यम वर्मा
व्यवस्था प्रभारी
मीनाक्षी
प्रसार प्रभारी
आदेश कुमार
आवरण
रामबाबू

सम्पादकीय कार्यालय :
3/274, विश्वास खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ–226010

सम्पादन एवं संचालन
पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

स्वत्वाधिकारी विश्वनाथ मिश्र द्वारा एम. डब्ल्यू. 6/221, बेनीगंज, गोरखपुर से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा आफसेट प्रेस, नखास, गोरखपुर से मुद्रित

कम्पोजिंग
कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ–226010

एक प्रति : 15 रुपये
वार्षिक : 90 रुपये
आजीवन : 1000 रुपये

•

समस्त पत्रव्यवहार केवल सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही करें।

इस अंक में

अपनी बात

मई दिवस के अवसर पर विशेष

मई दिवस पर मजदूर का आत्मदाह और उससे उठे कुछ सवाल..... 5

•

राजनीतिक–आर्थिक लेख और टिप्पणियां

नौंवी योजना का एप्रोच पेपर और बजट 1997-98 ... *–विश्वनाथ मिश्र*.....9

घटती औद्योगिक विकास दर ... – आलोक रंजन..... 11

पांचवीं वेतन आयोग रिपोर्ट : "सामाजिक न्याय के साथ विकास" का प्रहसन – आफताब आलम..... 12

भूमण्डलीकरण मॉडल का मतलब ... – चक्रवर्ती राघवन.....13

भूण्डलीकरण के अश्वमेध में बेरोजगारों की फौज – विश्वमित्र.....17

•

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का तीसरा दशाब्दी वर्ष :
चुने हुए दस्तावेज और लेख – दो

पेरिस कम्यून की वर्षगांठ के अवसर पर

पेरिस कम्यून की महान शिक्षाएं – चेड चिह–स्त्जू.....30

सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय अमर रहे
(पेरिस कम्यून शतवार्षिकी के अवसर पर, 18 मार्च 1971)
– 'रन मिन रपाओ' आदि के सम्पादकीय विभाग.....34

•

सूचना....संचार.....

"सूचना क्रान्ति" का सच – भूमण्डलीकरण के दौर में अमेरिकी साम्राज्यवाद की नई बाजार– रणनीति *– भूपेश कुमार सिंह*.....26

•

अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर विशेष सामग्री

मत बहलाओ हमें इस फरेब से *– केर्स्ती एरिक्शन की कविताएं*.....18

मुक्त बाजार की नारकीय गुलामी भोगती स्त्रियां –कात्यायनी.....19

•

साहित्य चिन्तन

सौन्दर्य शास्त्र का मार्क्सवादी परिदृश्य – *डा. रवि रंजन*.....21

•

पंजाबी कविता

पाश – *अमरजीत कौंके*

तर्कहीन युद्ध (पाश के नाम) –स्वर्णजीत सिंह सबी.....28

•

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त

सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद विश्व साम्राज्यवाद की कतारों में शामिल 44

•

विविधा

भाषा की साम्प्रदायिकता और आतंकवाद – विश्वनाथ मिश्र.....54

आपकी बात

--'दायित्वबोध' हिन्दी पाठकों के लिए निस्संदेह एक बौद्धिक एंव विचारोत्तेजक पत्रिका है। मैं पिछले दो सालों से इसे पढ़ता रहा हूं। अहिन्दी प्रदेश त्रिपुरा में, 'दायित्वबोध' की प्रति पाकर मैं महसूस करने लगा हूं कि हिन्दी भाषा, बौद्धिक पहलुओं के प्रसार में अपना भौगोलिक सीमा लांघने की क्षमता रखता है और विभिन्न भागों में फैले हिन्दी भाषी को बौद्धिक एकता एंव सामाजिक सचेतनता प्रदान कर सकता है।

नवम्बर'96 -फरवरी '97 वाले दा०बो० में 'स्तालिन के समय में सोवियत समाजवाद' तथा 'स्तालिन : एक मूल्यांकन' नामक लेख पढ़कर काफी खुशी हुई। मैं समझता हूं कि स्तालिन की महत्वाकांक्षा तथा संशोधनवादियों की आलोचना को समय के दायरे में देखने की जरूरत है। ऐतिहासिक घटना चक्र की अपनी एक गति होती है जो विभिन्न रूप में बाह्य एंव आंतरिक अन्तर्विरोधों के बीच से गुजरती है। लेनिन तथा स्तालिन ने ऐतिहासिक गति को एक नई दिशा देने की कोशिश की, अतः भूल होने की सम्भावना बनती है। War Communism, NEP तथा five year plans सर्वहारा क्रांति के स्थायीकरण की दिशा में उठाये कदम है, जहां पर संशोधनवादियों की आलोचना, ऐतिहासिक घटना चक्र की समग्र चिन्तन में सटीक दिखाई पड़ती है।

-- सत्यदेव पोद्दार, इतिहास विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, अगरतला - 799004

--दायित्वबोध का नया अंक मिला। भरपूर मानसिक खुराक के साथ मानक प्रस्तुति। सार्थक श्रम और सचेतन मार्ग-प्रशस्त करने के लिए बहुत-बहुत बधाई।

-- राणा प्रताप, 95, विवेकानन्द कालोनी, बेगमपुर, पटना - 800009

--पहली बार आपकी पत्रिका 'दायित्वबोध' पढ़ने को मिली। काफी तथ्यात्मक, सारगर्भित एंव उत्प्रेरक रही। लेकिन, बहुतेरे ऐसे सारे तथ्य एंव विचार थे, जिनको मैं अभी तक समझ नहीं पाया हूं। यह बिल्कुल सत्य है, जो मेरी कमजोरी है। विदेशी विचारकों के साथ-साथ भारतीय साम्यवादी समाजवादी विचारकों, क्रांतिकारियों एंव मनीषियों के विचारों को भी प्रकाशित करते रहें। मेरी रूचि है -- साम्यवादी साहित्य एंव चिन्तन को जानने की। कृपया, इसमें मुझे मार्गदर्शन कीजिए।

-- अजय कुमार मिश्र, (शिक्षक), बी-770, तिगड़ी, नयी दिल्ली -110062

--आपके लिए यह पत्र एक अनुरोध, एक सूचना और एक नये मित्र से सम्बन्ध कायम करने का सूत्र बने तो मैं भी खुश और यहां के हमारे दोस्त भी बहुत खुश होंगे। क्योंकि आप जिस लगन से 'दायित्वबोध' प्रकाशित कर रहे हैं उसकी सूचना इस बार 'वसुधा' से मिला। पहली बार हम लोग आपसे सम्बन्ध विस्तार के लिए अपना मित्रतापूर्ण हाथ फैला रहे हैं। नमूना नया और पुराना जो भी हो भेज दें। हम अपनी संस्था का परिचय भेज रहे हैं।

-- विष्णु प्रभात, प्रगतिशील लेखक संघ, नेपाल

--'दायित्वबोध' देखने को मिली। पत्रिका मन के भावों को उद्वेलित ही नहीं कुछ कर सकने की प्रेरणा भी देती है।

-- सुरेश जांगिड, अक्षर धाम, करनाल रोड, कैथल, - 136027

- केर्म्ती एरिक्सन की 'मिस्टर कामरेड्स' पुस्तक की भूमिका के लिए हेल्गा मॉस के साथ-साथ साथी विश्वनाथ मिश्र को बहुत-बहुत धन्यवाद।

- संध्या पाण्डे, किच्छा, ऊधम सिंह नगर

अपनी बात

मई दिवस पर मज़दूर का आत्मदाह और उससे उठे कुछ सवाल

इस वर्ष पहली मई को, 111वें मई दिवस के अवसर पर, राजधानी दिल्ली में आयोजित परम्परागत मई दिवस रैली के दौरान **सर्वेश** नामक एक मज़दूर ने आत्मदाह की कोशिश की। राजधानी में, संसद मार्ग पर यह घटना उस वर्ष घटी है जब स्वतंत्रता-प्राप्ति की स्वर्ण-जयन्ती मनाई जा रही है।

सर्वेश द्वारा आत्मदाह की कोशिश आज के दौर की एक **प्रतीक घटना** है। इस घटना ने करोड़ों मेहनतकशों के दिलों में दशकों से उमड़-घुमड़ रहे उस सवाल को अभिव्यक्ति दे दी है कि क्या हर वर्ष महज रस्म के तौर पर आयोजित होने वाले मई दिवस के प्रदर्शन और जनसभाएं शिकागो के शहीदों की स्मृतियों का अपमान नहीं है? खास तौर पर इसलिए कि ये आयोजन मुख्यतः बुर्जुआ और संसदीय वाममार्गी दलों की पुछल्ली ट्रेड यूनियनों और इनके घोर अर्थवादी नेताओं की अगुवाई में होते हैं। ऐसे मौकों पर वे ही लोग 'दुनिया के मजदूरो, एक हो!' और 'इंकलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाते हैं, जिन्होंने मजदूरों को न केवल देश के पैमाने पर बल्कि एक कारखाने के पैमाने तक पर खण्ड-खण्ड में बांट रखा है, जिन्होंने भूमण्डलीकरण की पूरी व्यवस्था और उसकी परिणतियों को खुद तो स्वीकार किया ही है; मज़दूर वर्ग को भी लगातार यह बताने की कोशिश की है कि इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। ये ही वे लोग हैं जिन्होंने पिछले लगभग चार दशकों के दौरान मज़दूर वर्ग को महज आर्थिक सहूलियतों-रियायतों और अति संकुचित जनवादी अधिकारों की मांगों तक लगातार कैद रखा है, उसकी राजनीतिक चेतना को भ्रष्ट और कुंद करने का काम किया है और राजनीतिक प्रचार एवं राजनीतिक मांगों-अधिकारों के लिए संघर्ष की तैयारी के काम को पूरी तरह तिलांजलि देकर व्यापक मेहनतकश अवाम को लगातार यह शिक्षा दी है कि वह अपने विकल्पों की तलाश मौजूदा व्यवस्था के सीमान्तों के भीतर ही करे, इससे आगे न देखे, राजनीति की कमान अपने हाथ में लेने की न सोचे और राज्यसत्ता के प्रश्न पर विचार न करे। ये ही वे लोग हैं जिन्होंने **पेरिस कम्यून** से लेकर चीन की **सांस्कृतिक क्रांति** तक की विरासत को विकृत, कलुषित और विस्मृत किया है और मई दिवस के आयोजन को एक फीका प्रहसन बना डाला है।

नकारात्मक और आत्मघाती ढंग से ही सही, सर्वेश ने मज़दूर आंदोलन के इस नेतृत्व के प्रति मज़दूरों में व्याप्त नाउम्मीदी, मोहभंग और क्षोभ की भावना को अभिव्यक्ति दी है। यदि सर्वेश और सर्वेश जैसी मानसिकता वाले कुछ मजदूरों को सीधे सम्बोधित करना हो तो यही कहा जा सकता है कि माचिस की तीली अपने शरीर पर नहीं, उस पूंजीवादी व्यवस्था के ऊपर फेंकने की जरूरत है जो सस्ती से सस्ती दर पर मज़दूरों की श्रम-शक्ति खरीदने के लिए उनकी भारी आबादी को बेरोजगारों की आरक्षित फौज की कतारों में धकेलती जा रही है, जो जीने की न्यूनतम जरूरतों तक को आम लोगों की पहुंच से बाहर करती जा रही है और जो एक-एक करके सदियों के कठिन संघर्षों और कुर्बानियों से अर्जित जनवादी अधिकारों तक को छीनती जा रही है। जहां तक पूरे मजदूर वर्ग का सवाल है, वह फिलहाल एक एकजुट क्रांतिकारी नेतृत्व और एकजुट मज़दूर आंदोलन के अभाव में फौरी तौर पर निराश और एक हद तक किंकर्तव्यविमूढ़ जरूर है, पर ऐसा हो ही नहीं सकता कि पूरा का पूरा मज़दूर वर्ग आत्महंता मानसिकता का शिकार हो जाये। सर्वेश के आत्मदाह के प्रयास जैसी घटनाएं महज यह संकेत देती हैं कि पानी अब नाक से ऊपर जा रहा है। असंतोष का लावा खौलता हुआ विस्फोट के चरम बिन्दु के निकट पहुंचता जा रहा है। भूमण्डलीकरण के दौर में पूरे विश्व स्तर पर मंदी और जड़ता का शिकार पूंजीवाद साम्राज्यवादियों और उनके छुटभैयों की इच्छा से स्वतंत्र अपनी आंतरिक गति से इस प्रक्रिया को लगातार तेज करता जा रहा है। अब सोचने-विचारने के एजेण्डे पर यह सवाल सर्वहारा वर्ग के हिरावल दस्तों के सामने है कि आने वाले दिनों में सड़कों पर फूट पड़ने वाले जनज्वारों को वे एक आमूल सामाजिक क्रांति में किस प्रकार रूपांतरित कर सकेंगे !

भूमण्डलीकरण-कुचक्र पूरी दुनिया की मेहनतकश आबादी पर जो कहर बरपा कर रहा है, उसके नतीजे आज **मेक्सिको** के किसान विद्रोह, विभिन्न लातिन अमेरिकी देशों में लगातार जारी हड़ताल और छापामार संघर्ष, **इण्डोनेशिया** के जन उभार और **फिलिप्पीस** एवं **पेरू** में क्रांतिकारी सर्वहारा संगठनों के नेतृत्व में लगातार जारी सशस्त्र संघर्षों के रूप में ही नहीं, बल्कि

फ्रांस, इंगलैण्ड, जर्मनी जापान, द० कोरिया आदि देशों में भी मज़दूरों और छात्रों के संघर्षों के रूप में भी सामने आ रहे हैं। ''बाजार समाजवाद'' के नाम पर पूंजीवाद की राह पकड़ने वाले **चीन** के नये शासकों की भी नींद हराम है। **रूस, पूर्व सोवियत संघ** के घटक देशों और **पूर्वी यूरोप** के देशों की मेहनतकश जनता विगत पांच-छः वर्षों से लगातार सड़कों पर प्रदर्शन और हड़ताल के जरिए पश्चिमी साम्राज्यवाद-निर्देशित नीतियों और उनके प्रभावों के विरुद्ध आवाज उठा रही है।

विगत छः-सात वर्षों से **फंड-बैंक-गैट** निर्देशित **संरचनागत समायोजन** की जो नीतियां एकदम खुले तौर पर हमारे देश में लागू हो रही हैं, उनके भयंकर नतीजे सामने आने शुरू हो चुके हैं। लाखों मजदूर प्रतिवर्ष तालाबंदी, छंटनी या स्वैच्छिक (?) अवकाश योजना के जरिए बेरोजगार हो रहे हैं। नई नौकरियां सृजित होना तो दूर, अवकाश लेने वाले मजदूरों की खाली जगहें भी भरी नहीं जा रही हैं।

पूंजी पहले भी गांवों की भारी आबादी को उनकी जगह-जमीन से उजाड़कर शहरी सर्वहारा की कतारों में शामिल करती रही है। अब **आर्थिक नवउपनिवेशवाद** के नये दौर में जो किसान आबादी कंगाल होकर मजदूरी करने शहरों की ओर आ रही है उसे संगठित मजदूरों की कतारों में स्थान मिल पाना नामुमकिन सा होता जा रहा है। दिहाड़ी पर खटते-खटते या किसी ठेकेदार के मातहत काम करते-करते मुश्किल से कुछ लोगों को अस्थायी या 'कैजुअल' मजदूर के रूप में काम मिल पाता है। उन्नत तकनोलॉजी के इस्तेमाल के साथ ही पूंजीपतियों ने पहले से संगठित मजदूर आबादी को भी तरह-तरह की तरकीबों से बिखरा देने का काम लगातार जारी रखा है।

राज्यसत्ता --- सरकार और न्यायपालिका हर तरह से इस मुहिम में पूंजीपतियों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का साथ दे रही हैं। पिछले दिनों पर्यावरण-प्रदूषण के नाम पर दिल्ली में जो 168 उद्योग सुप्रीम कोर्ट के निर्देश से बन्द हुए, उनमें काम करने वाले अल्प आय वर्ग के 30,000 से भी अधिक मजदूरों के घरों में आज भुखमरी की स्थिति है। सर्वेश जिस फैक्ट्री में काम करता था, वह भी सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर बन्द कर दिये जाने वाले 168 उद्योगों में से एक थी।

पर सर्वेश को आत्मदाह के मुकाम तक पहुंचाने के लिए सिर्फ नई आर्थिक नीतियों के अमल के विनाशकारी परिणाम ही जिम्मेदार नहीं हैं। पिछले दिनों बुर्जुआ समाचार-पत्रों में कई ऐसे सर्वेक्षण और मनश्चिकित्सकों के साक्षात्कार प्रकाशित हुए थे जिनमें इस तथ्य का उल्लेख किया गया था कि '90 के दशक में गरीबी और बेरोजगारी के कारण आत्महत्याओं की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। पर बात सिर्फ इतनी ही नहीं है। **मेहनतकश अवाम के सामने यदि कोई विकल्प मौजूद हो, यदि लड़ने का कोई रास्ता और राह दिखाने वाला नेतृत्व मौजूद हो तो कोई भी मजदूर आत्महत्या का मार्ग चुनना पसन्द नही करेगा।** भुखमरी और अपने बच्चों की अकाल-मृत्यु तक का सामना करते हुए वह उस व्यवस्था के विरुद्ध जूझेगा, जो सभी आपदाओं की जननी है। पर आज की त्रासद विडम्बना यह है कि मजदूर आंदोलन बुरी तरह विघटित और अशक्त अवस्था में है। ट्रेड यूनियनों का नेतृत्व या तो बुर्जुआ पार्टियों के दुमछल्लों के हाथों में है या उन सामाजिक जनवादियों, अर्थवादियों, संशोधनवादियों के हाथों में जो मजदूर वर्ग के बीच पूंजीवाद-विरोधी राजनीतिक प्रचार एवं शिक्षा तथा राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष से लगातार मुंह मोड़े रहे हैं और महज आर्थिक रियायतों-मांगों के लिए ही हड़ताल-प्रदर्शन आदि करते रहे हैं। आज स्थिति यह है कि ट्रेड यूनियन आंदोलन मजदूरों की आर्थिक मांगों को भी पुरजोर ढंग से उठा सकने की शक्ति खो चुका है।

दोगलेपन की इंतहा यह है कि जो संसदीय वामपंथी बंगाल और केरल में तथा केन्द्र में संयुक्त मोर्चा सरकार के शेयर होल्डर के रूप में नई आर्थिक नीतियों को लागू कर रहे हैं और सैद्धान्तिक तौर पर भी ''बाजार समाजवाद'' का ढिंढोरा पीट रहे हैं, वे महज मजदूरों में अपनी दुकानदारी बनाये रखने के लिए अपनी ट्रेड यूनियनों के माध्यम से सरकार के छिटपुट आर्थिक निर्णयों के विरोध की रस्म-अदायगी भी करते रहते हैं। संगठित मजदूर आंदोलन में वामपंथ के नाम पर यही नकली वामपंथी काबिज रहे हैं और अब इनकी कलई उतरने के साथ ही मजदूर आबादी में गहरी निराशा की सी स्थिति व्याप्त हो गई है। यह अनायास नहीं है कि मजदूरों के संगठित और अपेक्षतया बेहतर जीवन-स्थिति वाले हिस्से में और कर्मचारी यूनियनों में इधर भा.ज.पा. की दूकान --- बी.एम.एस. का प्रभाव तेजी से बढ़ा है। वास्तव में आम मजदूर के लिए व्यवहार के धरातल पर, बी.एम.एस., एच.एम.एस., सीटू, एटक, इंटक आदि के बीच का फर्क मिटता जा रहा है। फर्क यदि कोई है तो महज झण्डों और जुमलेबाजियों का।

यही कारण है कि जिस मजदूर वर्ग ने 111 वर्ष पहले 'काम के घण्टे आठ करो' के नारे के तहत अपनी राजनीतिक संघर्ष-यात्रा का मील का पत्थर मई दिवस 1886 की महान शहादतों के द्वारा कायम किया था, वह नारा भी आज बेमानी हो चुका है। भूमण्डलीकरण-कुचक्र में ठेका प्रथा, दिहाड़ी, 'पीस रेट' पर काम और तरह-तरह से मजदूर आबादी को बिखराकर तथा उसकी मोल-तोल की शक्ति को कम करके, नये सिरे से काम के घण्टों को असीमित हदों तक बढ़ा दिया गया है और मजदूर को महज एक कल-पुर्जा बना दिया गया है। सामाजिक जनवादी, अर्थवादी ट्रेड यूनियन नौकरशाह चुप हैं। अलग-अलग ट्रेड यूनियनों में पूरी मजदूर आबादी को विभाजित करके, उसकी राजनीतिक चेतना को कुन्द करके उन्होंने बुर्जुआ वर्ग और साम्राज्यवाद की जो

''ऐतिहासिक'' सेवा दशकों पहले शुरू की थी, उसका चरित्र अब एकदम नंगा हो चुका है।

स्थापित ट्रेड यूनियन नेतृत्व से बगावत करके मजदूर वर्ग समय-समय पर ए.के. राय या गुहा नियोगी जैसे कुछ जुझारू नेताओं की ओर मुड़ता रहा है, पर सुसंगत वैज्ञानिक विचारधारा के अभाव में तथा सर्वहारा वर्ग की पार्टी-गठन एवं निर्माण की समझ के अभाव में इस तरह के जुझारू अर्थवादी या अराजकतावादी संघाधिपत्यवादी (एनार्को-सिण्डिकलिस्ट) किस्म के नेतृत्व भी अंततः गतिरोध का ही शिकार होते गये हैं, किसी एक क्षेत्र विशेष में सिमटकर रह गये हैं या फिर अर्थवाद और संसदवाद के उसी महापंक में धंस गये हैं।

जहां तक कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों (मार्क्सवादी-लेनिनवादियों) के शिविर का प्रश्न है, इस बात को निस्संकोच स्वीकारना होगा कि अपनी विचाराधारात्मक कमजोरियों और भारतीय क्रांति के कार्यक्रम की गलत समझ के कारण औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के बीच वे कभी भी संगठित ढंग से काम नहीं कर सके। गांव के गरीबों के बीच भी या तो ''वामपंथी'' दुस्साहसवाद की लाइन लागू हुई या फिर अनुभववादी ढंग से अर्थवाद की लाइन। शुरुआती दौर में ''वामपंथी'' दुस्साहसवाद के ही कारण पूरे ट्रेड यूनियन मोर्चे को ही अर्थवादी कार्य कहकर खारिज किया गया। बाद में जनदिशा की वकालत करते हुए कुछ क्रांतिकारी ग्रुप तो खुद ही यूनियन के नाम पर जुझारू अर्थवाद की दुकान खोलकर बैठ गये। कुछ दूसरे ग्रुप छिटपुट प्रयोगों के बावजूद सच्चे लेनिनवादी अर्थों में कोई ''ब्रेक-थ्रू'' नहीं कर पाये। ऐसा प्रतीत होता है मानो मजदूर वर्ग के बीच क्रांतिकारी कार्य-सम्बन्धी लेनिन की सभी शिक्षाओं और अतीत की क्रांतियों के सभी सकारात्मक-नकारात्मक नतीजों को भुला-सा दिया गया है। भूमण्डलीकरण के दौर में आये बदलावों और आर्थिक नव उपनिवेशवाद के दौर में विश्व स्तर पर पूंजीवाद की पूरी कार्यप्रणाली की समझ का अभाव और निहायत कठमुल्लेपन के साथ नई सच्चाईयों को पुराने खांचे में फिट करने की अनथक कोशिश भी एक कारण है ही। पर इसके पीछे भी मुख्य कारण विचारधारात्मक समझ का अभाव ही है।

हमारी अपनी स्पष्ट समझ है कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर में लगभग चौथाई सदी से लगातार जारी फूट-दर-फूट के कारण परिधिगत नहीं, बुनियादी हैं। इसी शिविर में सच्चे, ईमानदार सर्वहारा क्रांतिकारी तत्वों का संकेन्द्रण सर्वाधिक है, पर इनके ग्रुपों के जो मौजूदा संघटन (कंपोजीशंस) हैं, उनकी एकता से किसी अखिल भारतीय क्रांतिकारी पार्टी के बनने की आशा अब नहीं के बराबर है। विगत तीन दशक के अनुभव बताते हैं कि **अब सर्वहारा पार्टी निर्माण और पार्टी गठन की प्रक्रिया नये सिरे से ही शुरू होगी। यह भारत में वर्ग-संघर्ष का नया चक्र होगा। वर्तमान कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर से ही, ग्रुपों की मौजूदा संरचनाओं के विघटन के साथ-साथ नई क्रांतिकारी शक्तियों का उद्भव होगा जो जनवादी केन्द्रीयता के उसूलों पर अपने को नये सिरे से संगठित करेंगी और विचारधारा एवं नई परिस्थितियों के मूल्यांकन तथा क्रांति की रणनीति एवं आम रणकौशल के प्रश्नों पर अपने भीतर और बाहर नये सिरे से बहस चलायेंगी। और साथ ही अपनी समझ को क्रांतिकारी सामाजिक प्रयोगों द्वारा सत्यापित करती चलेंगी। आज के समय की बोल्शेविक ढंग की पार्टी खड़ी करने के लिए सर्वहारा वर्ग के बीच - और मुख्य जोर औद्योगिक सर्वहारा वर्ग पर देते हुए, क्रांतिकारी राजनीतिक प्रचार, आर्थिक संघर्ष और राजनीतिक मांगों को लेकर संघर्ष का कार्य चलाना होगा और पार्टी कतारों में सर्वहारा वर्ग के बीच से ज्यादा से ज्यादा नई भरती करनी होगी।**

यहां एक और अहम मसले की ओर भी इंगित कर देना हम जरूरी समझते हैं। यूं तो हमेशा से ही सर्वहारा वर्ग की

मैक्सिम गोर्की के जन्मदिन (29 मार्च) के अवसर पर ...

क्रांतिकारी सर्वहारा का मानवतावाद सीधा-सादा है। वे मानवता के प्रति प्यार के सुंदर शब्दों का वाग्जाल नहीं रचते। इसका लक्ष्य है सारी दुनिया के सर्वहारा को पूंजीवाद के शर्मनाक, खूनी, पागल जुए से मुक्त करना और मनुष्य को यह सिखाना कि वे स्वयं को खरीदा-बेचा जाने वाला माल या विषयासक्त लोगों की ऐयाशी के लिए कच्चा माल न समझें। पूंजीवाद दुनिया पर उसी तरह अतिचार करता है जैसे कोई असमर्थ बूढ़ा आदमी किसी युवा स्वस्थ औरत पर अतिचार करे और बदले में गर्भाधान नहीं बुढ़ापे की बीमारियां दे। सर्वहारा मानवतावाद प्यार की गीतमय घोषणाओं की मांग नहीं करता, वह प्रत्येक मजदूर से अपने ऐतिहासिक दायित्व के प्रति चेतना चाहता है और सत्ता पर उसका हक चाहता है.... विषय लोलुपों, परजीवियों, फासिस्टों, हत्यारों, सर्वहारा वर्ग के दगाबाजों के प्रति तीव्र घृणा चाहता है। वह उन लोगों के प्रति घृणा चाहता है जो दुख का कारण है और जो हजारों-लाखों लोगों के दुख पर पनपे है। • मैक्सिम गोर्की (कल्चर एण्ड दि पीपुल)

क्रांतिकारी शिक्षा --- उसके बीच राजनीतिक प्रचार की कार्रवाई क्रांति की बुनियादी जरूरत रही है पर आज विश्व-पूंजीवाद के नये, सूक्ष्म तौर-तरीकों, प्रचार के नये-नये तरीकों, रणनीतियों एवं साधनों को देखते हुए, समाजवाद की फिलहाली पराजय से उपजी निराशा और विभ्रम को देखते हुए, मजदूर वर्ग में अभी भी प्रभाव जमाये रंग-बिरंगे नकली वामपंथियों की असलियत उजागर करने और सर्वहारा क्रांति के सही मार्ग की पहचान कायम करने की बुनियादी जरूरत को देखते हुए तथा **अक्टूबर क्रांति के नये संस्करण के निर्माण की राजनीतिक-वैचारिक चुनौतियों को देखते हुए आज मजदूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार एवं शिक्षा की कार्रवाई का महत्व पहले हमेशा से अधिक हो गया है। पूंजीवाद की 'ग्लोबल असेम्बली लाइन' पर खटने वाला जो मजदूर सारतः संगठित होता हुआ भी अपने को असंगठित-सा महसूस कर रहा है, उसे वास्तविकता का अहसास कराने के लिए उसकी राजनीतिक चेतना के धरातल को उन्नत करने पर आज पहले हमेशा की अपेक्षा अधिक बल देने की आवश्यकता है।**

इसी से जुड़ा हुआ पहलू है आज **बुद्धिजीवी वर्ग की भूमिका** का। **लेनिन** की इस बुनियादी प्रस्थापना को आज फिर याद करना जरूरी हो गया है कि **मजदूर वर्ग के आंदोलनों-संघर्षों के भीतर से विचारधारा** (और विचारधारा पर आधारित पार्टी) **अपने आप नहीं पैदा हो जाती। उसे बुद्धिजीवी वर्ग के प्रगतिशील धड़े द्वारा बाहर से डाला जाता है क्योंकि वही वर्ग समाज में आधुनिक विज्ञान का वाहक है।**

साम्राज्यवाद के इतिहास के विगत तीन दशकों की एक विशिष्ट अभिलाक्षणिकता यह भी है कि भारत जैसे पिछड़े देशों तक में प्रिण्ट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, व्यावसायिक शिक्षा संस्थानों, शोध-संस्थानों, अकादमियों, साम्राज्यवाद पोषित वालंटरी संस्थाओं और बहुत तेजी से विस्तारित नौकरशाही तंत्र ने **बुद्धिजीवियों की एक भारी जमात को अपने भीतर खपा और पचा लिया है।** कैरियरवाद और अवसरवाद का घटाटोप है। साहित्य-कला-संस्कृति तक की दुनिया में नामधारी वामपंथी अवसरवादियों की धकापेल है। पुरस्कारों, वजीफों, मानद पदों आदि की तरफ लपटते-झपटते लोग, निठल्ले प्रोफेसर, विलासी पत्रकार, सरकारी नौकरशाह -- ये सभी कथित वामपंथी रचनाकार हैं। इतिहासकार, अर्थशास्त्री -- अधिकांशतः पूंजी-प्रतिष्ठानों से ही नाभिनालबद्ध हैं।

ऐसी स्थिति में, तय सी बात है कि **शिक्षित मध्यवर्ग का एक बड़ा हिस्सा, पूंजीवाद के इस दौर में, अपना ऐतिहासिक पक्ष-परिवर्तन करके पूंजी और यथास्थितिवाद के पक्ष में जा खड़ा हुआ है।** दर्शन और विचार के क्षेत्र में भी आज वित्तीय पूंजी के अभूतपूर्व वर्चस्व की विचारधारा उत्तर आधुनिकतावाद, उत्तर संरचनावाद, उत्तर मार्क्सवाद आदि-आदि विभिन्न तर्क-विरोधी, विज्ञान-विरोधी, क्रान्ति-विरोधी दर्शन-सरणियों के रूप में सामने आ रही है।

सांस्कृतिक-विचारधारात्मक मोर्चे पर -- सर्वहारा वर्ग और बुद्धिजीवी मध्यवर्ग दोनों ही के बीच कार्य आज अत्यधिक चुनौतीपूर्ण हो उठा है, पर इसका महत्व भी आज बहुत अधिक बढ़ गया है। **मजदूर आंदोलन के भीतर सर्वहारा क्रांति के विज्ञान और संस्कृति की जड़ें जमाये बिना न तो सामाजिक जनवाद और अर्थवाद को निर्मूल किया जा सकता है, न ही सर्वहारा क्रांति के हरावल दस्तों को देश के पैमाने पर नये सिरे से संगठित करने की नई शुरुआत ही की जा सकती है।**

मई दिवस के दिन संसद मार्ग पर आत्मदाह की कोशिश करके एक मजदूर ने न सिर्फ संसद-संविधान के प्रति बल्कि अशक्त, विघटित, निष्क्रिय मजदूर आंदोलन और उसके विश्वासघाती सामाजिक जनवादी नेतृत्व के विरुद्ध पूरी मजदूर आबादी में पल रहे असंतोष, आक्रोश और मोहभंग की स्थिति का एक संकेत-मात्र दिया है। हालात जिधर जा रहे हैं, तय है कि आने वाले दिनों में असंतोष का यह लावा सड़कों पर विद्रोह की शक्ल में बह निकलेगा। पर विद्रोह या उभार क्रांति नहीं होते। वह क्रांति में अपने आप रूपांतरित भी नहीं होते। उसके लिए मार्गदर्शक विचारधारा और उससे लैस नेतृत्व की जरूरत होगी। बुद्धिजीवी वर्ग का जो निम्न मध्यवर्गीय हिस्सा आज भी यथास्थिति के विरोध में खड़ा है, उसे क्रांति की सक्रिय पक्षधरता के लिए और मजदूर आंदोलन के भीतर क्रांति की विचारधारा और संस्कृति ले जाने के लिए तैयार करना होगा। मजदूरों के बीच राजनीतिक प्रचार, आर्थिक संघर्ष एवं राजनीतिक संघर्ष की लम्बी कार्रवाई चलाते हुए क्रांतिकारी सांगठनिक आधार बनाना होगा और अर्थवादी ट्रेड यूनियन नौकरशाही तथा सामाजिक जनवाद की श्रमिक-द्रोही राजनीति का समूल नाश करने के लिए संकल्पबद्ध होना होगा।

इस दिशा में आज होने वाली छोटी-छोटी नई शुरुआतें भी कल ऐतिहासिक नई पहल की प्रारम्भिक कड़ियां बन सकती हैं। आज इसी तरह की नई शुरुआतों की जरूरत है।

●

नौवीं योजना का एप्रोच पेपर और बजट 1997-98

हाथी के दांत दिखाने के और, खाने के और !

● विश्वनाथ मिश्र

केन्द्रीय साझा सरकार के बाईस दिवसीय अन्तरवर्ती संकट के बावजूद 1997-98 का केन्द्रीय बजट भी वैसे ही पेश और पास हो गया जैसे 1996-97 का बजट पेश और पास हो गया था। इस बजट प्रस्तुति में भी पिछली बजट प्रस्तुति की भांति ही **साझा न्यूनतम कार्यक्रम** के ''आदर्श वाक्य'' ''सामाजिक न्याय के साथ विकास'' और ''समानता के साथ विकास'' को पुनः उसी पुरानी ''प्रतिबद्धता'' के साथ दुहराया गया। इतना ही नहीं, **नौवीं योजना के एप्रोच पेपर**, या संक्षेप में, **ए.पी.एन.** में खासतौर से जोर दिया गया है कि नौवीं योजना के लक्ष्य के तौर पर

> अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक पिछड़ेपन को दूर किया जायेगा, और कृषि मजदूरों, छोटे और सीमांत किसानों एवं दस्तकारों तथा ऐतिहासिक रूप से सुविधावंचित सभी समूहों के आय-स्तरों को निर्णायक ढंग से ऊपर उठाया जायेगा।

बेशक यह दावा तो किया गया है **एप्रोच पेपर** में। परन्तु यह ठीक उस मुहावरे को ही चरितार्थ करता है कि **हाथी के दांत दिखाने के और, खाने के और** होते हैं। दरअसल यह दावा लोकरंजकता की एक और असफल कोशिश है, कारण कि पारित बजट न्यूनतम अंशों में भी इस दावे की पुष्टि नहीं करता। बल्कि सच तो यह है कि यह और खुले और क्रूर रूप में ऊपरी धनी वर्ग, उच्चतर मध्यम वर्ग और देशी-विदेशी पूंजीपति वर्ग के हितों की हिफाजत और बढ़ोत्तरी के लिए ही प्रतिबद्ध है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आज भी भारी आबादी शिक्षा, स्वास्थ्य, जलापूर्ति, सफाई और सांस्कृतिक पिछड़ेपन की निरन्तर बढ़ती हुई समस्याओं से ग्रस्त है। परन्तु पिछले वित्तीय बजट में जहां इन सबके मद में **सकल घरेलू उत्पाद** का मामूली अंश यानी मात्र 1.44 प्रतिशत निर्धारित किया गया था, वहीं इस बजट में भी नाममात्र की वृद्धि करके महज 1.49 प्रतिशत की धनराशि रखी गयी है। जहां **साझा न्यूनतम कार्यक्रम** के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद का कम से कम 3 प्रतिशत और समूची शिक्षा पर कुल 6 प्रतिशत खर्च करने का दावा किया गया था, वहां अभी उस लक्ष्य का आधा भी हासिल नहीं किया जा सका है। रही बात स्वास्थ्य-सफाई सम्बन्धी खर्च की, तो इसकी सबसे त्रासद विडम्बना यह है कि इस बजट में स्वास्थ्य पर **सकल घरेलू उत्पाद** का जो अंश खर्च करने के लिए रखा गया है, वह दुनिया के किसी भी देश, यहां तक कि उप-सहारा के अफ्रीकी देशों द्वारा इस मद में खर्च की जाने वाली राशि से भी बहुत कम है। भले ही प्रधानमंत्री आगामी अगस्त में **कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना** का उद्घाटन 250 करोड़ रुपये के बजट आवंटन के साथ करने वाले हैं, परन्तु जहां 1991 की जनगणना के अनुसार, 466 जिलों में से 136 जिलों में महिलाओं की साक्षरता-दर 20 प्रतिशत से भी कम है; उसे देखते हुए यह राशि भी क्या **ऊंट के मुंह में जीरा** नहीं साबित होगी? साथ ही, क्या इसका भी एक अच्छा-खासा हिस्सा भ्रष्टाचार में लिप्त प्रशासनिक और शैक्षिक अधिकारियों की जेबों में ही नहीं चला जायेगा?

शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा किया जाने वाला खर्च (सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में)

वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद में प्रतिशत हिस्सा	
	शिक्षा, कला और संस्कृति	स्वास्थ्य, जलापूर्ति और सफाई
1989-90	3.36	1.26
1990-91	3.25	1.23
1991-92	3.12	1.19
1992-93	3.04	1.17
1993-94	3.04	1.19
1994-95 (संशोधित अनुमान)	3.00	1.17
1995-96 (बजट अनुमान)	2.84	1.12

स्रोत : सी.एम.आई.ई., जून 1996

परन्तु साझा सरकार इसके अलावे और कर भी क्या सकती है? और कोई भी सरकार इसके अलावे क्या कर सकती है -- इस संकटग्रस्त बुर्जुआ राजनीतिक फ्रेम में? वस्तुतः यह तो उन्हीं ''नीतियों'' की भारी मेहनतकश आबादी के लिए बढ़ती आक्रामक निरन्तरता है जिनके लिए कवायद तो ''कम्प्यूटरी ब्वॉय'' राजीव गांधी के जमाने से ही शुरू कर दी गयी थी, जो धूमकेती आभा वाले ''मिस्टर क्लीन'' वी.पी. सिंह और चन्द्रशेखर के काल में खाद-पानी पाती हुई नरसिंह राव-मनमोहन सिंह के जमाने में अपनी पूरी नग्नता के साथ पूरे देश पर थोप दी गयी। बेशक अपने कार्यकाल के अन्तिम दिनों में इनकी नग्न क्रूरता पर नरसिंह राव-मनमोहन सिंह एण्ड कम्पनी ने ''मानवीय चेहरे के साथ विकास'' का मुखावरण डालने की कोशिश की, पर तबतक देर हो चुकी थी। इसी से सबक लेकर 14 दलों ने **साझा न्यूनतम कार्यक्रम** की खिचड़ी पकायी और उसी पुराने माल पर ''सामाजिक न्याय के साथ विकास'' तथा ''समानता के साथ विकास'' का नया वर्क चढ़ाकर परोसना शुरू किया, जिस पर खुशी के मारे भारतीय पूंजीपति फूले नहीं समा रहे हैं, तथा उनके आर्थिक **थिंक टैंक विश्व बैंक** और **अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष** भी शाबाशी में चिदम्बरम की पीठ ठोंक रहे हैं। इतना ही नहीं, साझा मोर्चा में शामिल और उसकी संचालन-समिति में निर्देशक की भूमिका अदा कर रहे तथाकथित वामपंथी दल भी कुछ सतही और बेमतलब अगर-मगर के साथ वर्तमान बजट को ''लोक-निर्दिष्ट'' बजट कह चुके हैं। वैसे बुर्जुआ व्यवस्था की हिफाजत में तन्मय और उसी की राजनीतिक गटरगंगा में गोते लगाने वाले कीट बन चुके इन तथाकथित चुनावी वामपंथी दलों से इसके अलावे और अपेक्षा भी क्या की जा सकती है? ऐसा करना उनकी विवशता और जरूरत दोनों ही है – संशोधनवादियों और सामाजिक जनवादियों का आज के दौर में यही चरित्र हो सकता है।

1997-98 का केन्द्रीय बजट कितना ''लोक निर्दिष्ट'' है, कितना ''समानता के साथ विकास'' वाला है, यह कैसे ''अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक पिछड़ेपन'' को दूर करेगा, तथा कैसे यह कृषि-मजदूरों, छोटे एवं सीमांत किसानों, दस्तकारों और ऐतिहासिक रूप से सुविधावंचित समूहों के आय-स्तरों को ''निर्णायक रूप से'' ऊपर उठायेगा -- इन सब बातों की कलई तब एकदम खुल जाती है जब हम, प्रसंगवश, इस बजट की कुछ और प्रमुख बातों पर नजर डालते है। इस बजट में 7 प्रतिशत की आर्थिक वृद्धि दर का दावा किया गया है। परन्तु, कृषि मंत्री चतुरानन मिश्र ने स्वीकार किया है कि कृषि-विकास दर का निर्धारित 4.5 प्रतिशत लक्ष्य पूरा होने वाला नहीं है जो कि 7 प्रतिशत की कुल विकास दर के लिए आवश्यक समझा गया है। कारण कि कृषि क्षेत्र में कुल पूंजी-निर्माण के अनुपात के तौर पर निवेश 1979-80 में 19.1 प्रतिशत से गिरकर 10 प्रतिशत से भी कम हो चुका है। नौवीं योजना के पहुंच-प्रयास प्रपत्र (ए.पी.एन.) में इस बात को स्वीकार तो किया गया है कि आठवीं योजना में सिंचाई क्षमता का विकास अभूतपूर्व रूप से सबसे कम रहा, फिर भी वर्तमान बजट में इस प्रवृत्ति को पलटने का कोई उपक्रम नहीं किया गया है। उल्टे, 1996-97 के बजट-अनुमान में सिंचाई और बाढ़-नियंत्रण के लिए 1214 करोड़ रुपये का जो योजना-व्यय निर्धारित किया गया था, उसमें भारी कटौती करके, 1997-98 के इस बजट में मात्र 323 करोड़ की ही धनराशि रखी गयी है। यहां यह इंगित कर देना प्रासंगिक है कि त्वरान्वित सिंचाई योजना और **गंगा कल्याण योजना** का जो ढिंढोरा पीटा जा रहा है, उससे भी इस भारी कटौती की भरपायी नहीं हो सकती।

जहां तक ''अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक पिछड़ेपन'' को दूर करने की बात है, तो इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि खराब अवरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) अर्थव्यवस्था के विकास में एक बड़ी बाधा है। बेशक नौवीं योजना के पहुंच-प्रपत्र (**ए.पी.एन.**) में इस मोर्चे पर आठवीं योजना की असफलता को इंगित किया गया है, परन्तु इसके बावजूद वर्तमान बजट में इस बावत जोर देने के बजाय, पूंजी बाजार और काला बाजार (स्वेच्छया प्रकटीकरण योजना के जरिए) पर ही अधिक भरोसा दर्शाया गया है; देश में खनिज तेल की खोज की जिम्मेदारी बहुराष्ट्रीय निगमों को उन्हीं की शर्तों और सुविधाओं के अनुसार सौंप दी गयी है; पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस के लिए जो बजट (240 करोड़ रुपये) रखा गया है, वह 1996-97 के बजट से भी कम है, और ऊर्जा पर भी केवल 2 प्रतिशत अधिक बजट रखा गया है जबकि पूर्वानुमानित मुद्रास्फीति 7 प्रतिशत है। अवरचनात्मक निवेश (अनुमानतः 200 अरब डालर) के लिए विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (**एफ.डी. आई.**) पर भरोसा किया गया है, लेकिन विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की जो वर्तमान स्थिति है उसे देखते हुए तो यह लक्ष्य शायद एक शताब्दी में भी पूरा होने वाला नहीं है।

निश्चय ही इस बजट में आयकर-रियायतों तथा काले धन की स्वेच्छया प्रकटीकरण योजना के जरिये दौलतमंदों को और भी दौलतमंद बनाने का उपक्रम तो किया गया है, पर गरीबों और गरीबी-रेखा से नीचे जीने वालों के लिए ''सामाजिक न्याय के साथ विकास'' की खोखली नारेबाजी के अलावे और कुछ नहीं किया गया है, जबकि *आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97* ने यह स्पष्ट तथ्योद्घाटन किया है कि पिछले पांच वर्षों के सुधार-काल में कृषि मजदूरों की वास्तविक आय में गिरावट आयी है।

कुल मिलाकर, ''सामाजिक न्याय के साथ विकास'' और ''समानता के साथ विकास'' के नाम पर और साझा मोर्चा में शामिल तथाकथित वामपंथी दलों की शब्दावली में ''लोक-निर्दिष्ट'', इस बजट का असली चरित्र सामाजिक अन्याय के साथ विकास, असमानताओं में और वृद्धि करने वाला तथा लोक-विरुद्ध एवं अमीरों को और अमीर तथा गरीबों को और गरीब बनाने वाला ही है। इसी तरह, पिछले दिनों वित्त मंत्री ने जो वित्त विधेयक लोकसभा में पेश किया उसमें भले ही गरीबों के हितों की शाब्दिक दुहाई दी गयी थी, परन्तु वास्तव में वह गरीब-विरोधी विधेयक ही था। भला, उदारीकरण के लिए प्रतिबद्ध बजट और वित्त विधेयक गरीब-निर्दिष्ट हो भी कैसे सकते है? और यदि सचमुच ऐसा हो सकता तो उदारीकरण ही क्यों होता? परन्तु यही तो आज की संकटग्रस्त बुर्जुआ राजनीति का वाक्-छल है जो सभी चुनावी राजनीतिक दलों की विवशता और जरूरत दोनों बन चुका है -- चाहे वे धुर दक्षिणपंथी हों, मध्यमार्गी हों या तथाकथित वामपंथी! इसी वाक्-छल को जहां बुर्जुआ मीडिया ''ऐतिहासिक'', ''उल्लेखनीय'' और ''नयी जमीन तोड़ने वाला'' कहकर प्रचारित कर रहा है, वहीं तथाकथित वामपंथी दल इसे ''लोक निर्दिष्ट'' कहते नहीं अघा रहे है। हां, कभी-कभी वे लोक-विद्रूपक शैली में कुछ अर्थहीन युक्तिचीनी भी कर दिया करते है, जो जनता के बीच चेहरा बचाने की एक भोंड़ी तरकीब के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसकी बानगी तो खासतौर से सी.पी.आई. (एम) कई बार प्रस्तुत कर चुकी है। बजट पर लोकसभा में बहस के दौरान जहां एक तरफ सी.पी.आई. (एम) के सांसद रूपचंद पाल और बासुदेव आचार्य ने बजट को ''जनविरोधी'' और आत्म-निर्भरता की नीतियों के विरुद्ध बताया, वहीं दूसरी तरफ उन्होंने साम्प्रदायिक और फूटपरस्त ताकतों को रोकने के नाम पर इस पर अपनी सहमति भी जतायी। इसी तरह पिछली 2 अप्रैल को सी.पी.आई (एम) ने बजट के विरोध में ''भारत बन्द'' का आह्वान करके पुनः साझा मोर्चा के आन्तरिक संकट का वास्ता देकर उसे वापस भी ले लिया। इसी तरह भाजपा भी जनता के बीच अपना चेहरा बचाने के नाम पर बजट-विरोध का जब तब नाटक करती रही है। परन्तु वास्तविकता यह है कि ''उदारीकरण'' की दिशा में निर्दिष्ट इस जनविरोधी बजट पर सभी चुनावी राजनीतिक दलों में आम सहमति की ही स्थिति है। और यही आज की भारतीय चुनावी राजनीति और उसमें लिप्त सभी राजनीतिक दलों की अभिलाक्षणिक विशिष्टता भी है। एप्रोच पेपर और बजट तथा उस पर सत्तापक्ष और विपक्ष सभी की प्रतिक्रियाएं **हाथी के दांत दिखाने के और, खाने के और** मुहावरे को ही चरितार्थ करती हैं। अन्यथा कौन नहीं जानता, कि गुजराल प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने और पदभार ग्रहण करने के बाद उद्योगपतियों की संस्था, **सी.आई.आई.** के वार्षिक कान्फ्रेन्स में अपना पहला औपचारिक उद्गार प्रकट करने के दौरान ही यह स्पष्ट आश्वासन दे चुके हैं कि ''साझा मोर्चा द्वारा पिछले दस महीनों से चले आ रहे नीतिगत फ्रेमवर्क में कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा तथा संरचनात्मक समायोजनों को उनकी तार्किक परिणति तक ले जाया जायेगा।'' ●

कृषि, सिंचाई, ग्रामीण विकास और उर्वरक सब्सिडियों पर बजट का आबंटन (वर्ष 1989-99 तक)

मद	बजट आवंटन (सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में)									
	89-90	90-91	91-92	92-93	93-94	94-95	95-96	*96-97	•97-98	□ 98-99
1. कृषि	0.37	0.30	0.34	0.33	0.31	0.32	0.28	0.26	0.24	0.23
2. सिंचाई	0.02	0.04	0.04	0.02	0.03	0.02	0.03	0.11	0.07	0.03
3.ग्रामीण विकास	0.61	0.50	0.37	0.46	0.57	0.61	0.53	0.43	0.39	0.40
4.उर्वरक सब्सिडी	0.99	0.82	0.84	0.82	0.56	0.61	0.61	0.66	0.62	0.63

* बजट अनुमान ● संशोधित अनुमान □ बजट अनुमान

स्रोत : अभिजीत सेन, फ्रण्टलाइन, 4 अप्रैल 1997 पृ. 97

घटती औद्योगिक विकास दर : सरकारी दावों की खुलती पोल

● आलोक रंजन

पिछले सात वर्षों से राव, देवगौड़ा और अब गुजराल की सरकारें लगातार दावा करती आ रही हैं कि उदारीकरण और निजीकरण के तौर पर "आर्थिक सुधारों" की प्रक्रिया की बदौलत देश के औद्योगिक विकास में तेजी आयेगी, सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) की एक टिकाऊ उच्चतर विकास दर हासिल होगी, और मुद्रास्फीति-दर काबू में रहेगी। परन्तु "आर्थिक सुधारों" की प्रक्रिया के जारी रहने के इतने वर्षों बाद भी 7 प्रतिशत की कथित टिकाऊ वृद्धि दर का लक्ष्य हासिल नहीं किया जा सका है -- बावजूद इसके कि सुधार पूर्व मुद्रास्फीति स्तर की तुलना में मुद्रास्फीति की वर्तमान दर लगभग संतोषजनक ही है। बल्कि, इसके उलट सच्चाई तो यह है कि, पिछले वित्तीय वर्ष की तुलना में, वर्तमान वित्तीय वर्ष में, औद्योगिक क्षेत्र पर आर्थिक मंदी की ही काली छाया मंडराने लगी है। जैसाकि नीचे की तालिका से स्पष्ट है, खासतौर से, बुनियादी उत्पादों और "कन्ज्यूमर ड्यूरेबल्स" के क्षेत्रों में भारी मंदी आयी है।

तालिका : औद्योगिक उत्पादन सूचकांक : उपयोग आधारित
[पिछले वर्ष (अप्रैल से अक्टूबर तक) के दौरान प्रतिशत परिवर्तन]

	1995-96	1996-97
बुनियादी उत्पाद	11.1	6.7
पूंजीगत उत्पाद	15.1	16.6
मध्यवर्ती उत्पाद	7.2	10.8
कन्ज्यूमर ड्यूरेबल्स	30.2	9.7
कन्ज्यूमर नॉन-ड्यूरेबल्स	9.2	7.7
कुल उत्पाद	13.5	8.2

नोट :. कन्ज्यूमर ड्यूरेबल्स के लिए अप्रैल 1998 एक मोड़-बिन्दु साबित हुआ। वृद्धि की दर मार्च 1996 में 40.8 प्रतिशत से गिरकर अप्रैल 1996 में 10.9 प्रतिशत पर आ गयी।

स्रोत : सेण्ट्रल स्टैटिस्टिकल आर्गनाइजेशन (मासिक बुलेटिन), इकनामिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली, 3 मई 1997, पृ. 964

उल्लेखनीय है कि जहां 1995-96 में 24 उद्योगों में विकास की दर 12 प्रतिशत थी, वहीं 1996-97 के पहले सात महीनों के दौरान गिरकर यह 4.8 प्रतिशत पर आ गयी। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि ये 24 उद्योग औद्योगिक उत्पादन सूचकांक का एक भारी हिस्सा अर्थात 50.37 प्रतिशत भाग निर्मित करते हैं। खासतौर से जिन उद्योगों में मंदी और ऋणात्मक वृद्धि दर परिलक्षित हुई है वे बहुत ही बुनियादी महत्व के उद्योग हैं -- मसलन, कच्चा पेट्रोलियम, नाइट्रोजन और फास्फेटधारी उर्वरक, अल्युमिनियम और कापर कैथोड, वस्त्र एवं जूट उद्योग। विवरण के तौर पर, कच्चे पेट्रोलियम उद्योग में अप्रैल से अक्तूबर तक की अवधि में 10.2 प्रतिशत की ऋणात्मक वृद्धि परिलक्षित हुई, जबकि 1995 वर्ष में इसी अवधि के दौरान यह वृद्धि सकारात्मक रूप से 13.3 प्रतिशत थी। इसी प्रकार, जहां पिछले वर्ष (1995 में) अप्रैल से अक्टूबर तक की अवधि में नाइट्रोजनधारी और फास्फेटधारी उर्वरकों में विकास दरें क्रमशः 11.3 प्रतिशत और 9.7 प्रतिशत रहीं, वहीं इनके विपरीत, इस वर्ष इसी अवधि के दौरान, दोनों में क्रमशः 5 प्रतिशत और 6 प्रतिशत की ऋणात्मक वृद्धि दरें परिलक्षित हुईं। अल्युमिनियम और कापर कैथोड़ उत्पादन में क्रमशः 1.4 प्रतिशत और 20.2 प्रतिशत की ऋणात्मक वृद्धि दरें प्रकट हुईं, जबकि पिछले वर्ष ये वृद्धि दरें क्रमशः 11.8 प्रतिशत और 17.3 प्रतिशत थीं। वस्त्र मिल क्षेत्र और जूट विनिर्माण क्षेत्र में ऋणात्मक वृद्धि की दरें क्रमशः 4.4 प्रतिशत और 10.8 प्रतिशत रहीं, जबकि पिछले वर्ष इनकी वृद्धि दरें क्रमशः 5.9 प्रतिशत और 10.2 प्रतिशत थीं।

इतना ही नहीं, अवरचनागत (इन्फ्रास्ट्रक्चरल) उद्योगों जैसे बिजली, कोयला, बिक्री योग्य इस्पात, कच्चा पेट्रोलियम, पेट्रोलियम रिफाइनरी उत्पादों एवं सीमेण्ट के उत्पादन में भी, अप्रैल-अक्टूबर 1996 के दौरान, कुल मिलाकर 3 प्रतिशत की ही वृद्धि दर प्राप्त हुई, जो पिछले वर्ष इसी अवधि के दौरान प्राप्त वृद्धि दर (10.4 प्रतिशत) की एक-तिहाई से भी कम है। यहां गौरतलब है कि ये उद्योग, कुल मिलाकर औद्योगिक उत्पादन सूचकांक का 28.77 प्रतिशत भाग पूरा करते हैं। कार उद्योग और मोटर साइकिल उद्योग में भी इस वित्तीय वर्ष के पहले सात महीनों के दौरान यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हुई है -- अर्थात इनकी वृद्धि दरें, जो विगत वर्ष क्रमशः 33.4 प्रतिशत और 28 प्रतिशत थीं, इस वर्ष केवल 23 प्रतिशत और 25.8 प्रतिशत ही प्राप्त हुई हैं। नमक और चीनी उद्योगों की भी यही हालत है -- जहां पिछले वर्ष इनकी वृद्धि दरें क्रमशः 14.3 प्रतिशत और 143.7 प्रतिशत थीं, घटकर इस वर्ष क्रमशः मात्र 3 प्रतिशत और 46.8 प्रतिशत रह गयीं।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि लगभग समूचे औद्योगिक क्षेत्र में मंदी के बादल गहराते जा रहे हैं। अब सवाल उठता है कि इसके कारण कहां निहित हैं। औद्योगिक क्षेत्र का तो यह कहना है कि इसके कारण बैंकों द्वारा की गयी 'क्रेडिट राशनिंग' में निहित हैं। बेशक सरकार ने भी शायद यही कारण मान लिया है, तभी तो रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने एक व्यापक ऋण नीति की घोषणा करके तदनुरूप कार्यवाही भी शुरू कर दी है। परन्तु सच तो यह है कि न तो उक्त कथित कारण वास्तविक है, और न ही किया गया उक्त उपाय ही कारगर सिद्ध होने वाला है। यदि वर्तमान वित्तीय वर्ष के पहले सात महीनों के ऋण बाजार का जायजा लिया जाये, तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस अवधि के दौरान औद्योगिक क्षेत्र में ऋण की मांग ही वास्तव में नहीं के बराबर रही है। फिर तो बैंकों द्वारा ऋण की राशनिंग का तर्क ही वाहियात है।

दरअसल, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का औद्योगिक क्षेत्र जिस सच्चाई पर पर्दा डालने की कोशिश कर रहा है, उसकी प्रातिनिधिक राजनीतिक सत्ता और सरकार भी तदनुरूप ही व्यवहार कर रही है। वास्तव में, आर्थिक मंदी का आना तो स्वयं पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की आन्तरिक गति में ही निहित है, और खासतौर से, साम्राज्यवाद-नुस्खा-निर्देशित "आर्थिक सुधारों" की भयानक आक्रामकता के चलते तो इसे और तेजी से आते ही जाना है। यह भारत के लिए ही कोई नई विशिष्ट कहानी नहीं है। दुनिया के जिन देशों में "आर्थिक सुधारों का चक्र चला है और चल रहा है, उनके उत्पादन क्षेत्रों का यही हश्र हुआ और हो रहा है। वस्तुतः यह एक ऐसा दुश्चक्र है जो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था और उत्पादन प्रणाली में अनिवार्य, अपरिहार्य और असमाधेय ही है। यह उसका अंतकारी ढांचागत संकट है।

●

पांचवी वेतन आयोग रिपोर्ट

"सामाजिक न्याय के साथ विकास" का एक विद्रूप प्रहसन

हमारे देश में कुल श्रमशक्ति का मात्र 8 प्रतिशत ही संगठित क्षेत्र में लगा हुआ है, और उसमें भी सरकारी कर्मचारियों की संख्या महज 4 प्रतिशत है। केन्द्र सरकार मात्र इसी 4 प्रतिशत के लिए प्रायः हर दस वर्ष पर वेतन आयोग गठित करती है जिसकी रिपोर्ट आने और उसे लागू होने में अक्सर इतना विलम्ब हो जाता है कि उसकी वेतन, भत्ता और सेवा-शर्तों आदि सम्बन्धी संस्तुतियां प्रायः अप्रासंगिक हो जाया करती हैं। पांचवे केन्द्रीय वेतन आयोग की रिपोर्ट का भी यही हश्र होना है जो विगत 31 जनवरी, 1996 को प्रकाशित हो चुकी है। बहरहाल, यह रिपोर्ट जिस पर प्रशासनिक सेवा और पुलिस सेवा से लेकर प्रतिरक्षा सेवा एंव अन्य लगभग सभी प्रभावित होने वाले सेवा क्षेत्रों के कर्मचारी अपने तीखे असंतोष और आक्रोश का इजहार कर चुके हैं – उस 14 दलों की साझा केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त वेतन आयोग द्वारा प्रस्तुत की गयी है जो **साझा न्यूनतम कार्यक्रम** के "आदर्श वाक्य" यानी "सामाजिक न्याय के साथ विकास" के प्रति अपनी "प्रतिबद्धता" का बार-बार दम भरती है। तो, आइये सरसरी तौर पर देखें कि इस रिपोर्ट में सरकारी कर्मचारियों के साथ कितना और कैसा "सामाजिक न्याय" किया गया है।

पांचवे वेतन आयोग ने वेतनमानों की संख्या बेशक 51 से घटाकर 34 कर दी है, परन्तु न्यूनतम और उच्चतम वेतनमानों के बीच जो भारी अन्तर रखा है, वह न सिर्फ साझा न्यूनतम कार्यक्रम के, "सामाजिक न्याय" को झुठलाने वाला है, बल्कि स्वयं अपने उस दावे को ही झुठलाने वाला है जिसमें कहा गया है कि इसने चौथे वेतन आयोग द्वारा निर्धारित न्यूनतम-उच्चतम वेतनमान अनुपात को बनाये रखा है। उल्लेखनीय है कि चौथे वेतन आयोग ने न्यूनतम और उच्चतम वेतनमानों के बीच 1 : 10.7 का अनुपात निर्धारित किया था, जबकि इस पांचवे वेतन आयोग ने इस अनुपात की खाई को और चौड़ा करके 1 : 12.3 कर दिया है। इतना ही नहीं, इसने जहां अपनी रिपोर्ट में उच्चतम 26,000 रू. वेतनमान देने की बात कही है, वहीं, उससे भिन्न, वेतनमान सारणी में, उच्चतम वेतनमान 30,000 रुपये रखा है, जबकि केन्द्रीय कर्मचारियों द्वारा न्यूनतम 3,440 रुपये का वेतनमान मांगे जाने के बावजूद, इस आयोग ने सिर्फ 2440 रुपये का ही न्यूनतम वेतनमान दिये जाने की सिफारिश की है। उच्चतम वेतनमान के रूप में 26,000 रुपये की जगह 30,000 रुपये का वेतनमान कैसे शामिल कर लिया गया – यह अभी भी एक अबूझ पहेली बना हुआ है।

वेतन आयोग ने न्यूनतम और उच्चतम वेतनमानों के लिए कोई एक समान सिद्धान्त नहीं अपनाया है, बल्कि क्रमशः उच्चतर वेतनमानों के साथ अधिकाधिक पक्षपात और निम्नतर वेतनमानों के साथ अन्याय ही किया है। इसका पहला भेदभावपूर्ण रवैया तो यही रहा है कि जहां इसने न्यूनतम वेतनमान के निर्धारण में **राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद** से परामर्श लिया, वहीं उच्चतम (अर्थात संयुक्त सचिवों और उच्चतर अधिकारियों के) वेतनमानों के निर्धारण में इण्डियन इंस्टीट्यूट आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन से परामर्श लिया और उनके "उपभोग स्तर" को मानक बनाया। क्यों नहीं उच्चतम वेतनमान को भी राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद को ही सौंप दिया, और क्यों नहीं उच्चतम वेतनमानों के लिए भी उत्पादकता सूचकांक, अर्जित योग्यता और दायित्व के स्तर आदि को ही आधार बनाया? इसका कोई जवाब वेतन आयोग के पास नहीं है। उत्पादकता सूचकांक आदि को आधार बनाते हुए भी आयोग ने न्यूनतम वेतनमान वाले कर्मचारियों के साथ अन्याय ही किया है। 1985-86 से 1995-96 तक की अवधि में जहां प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादकता में 39.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई, वहीं इसके विपरीत, 750 रुपये वेतनमान पाने वाले कर्मचारियों को मात्र 8.8 प्रतिशत का लाभ दिया गया है, क्योंकि उनका वेतनमान 750 रुपये से बढ़ाकर सिर्फ 2440 रुपये ही किया गया है। परन्तु कैबिनेट सचिव के रूप में अधिकतम वेतनमान पाने वालों को 48.7 प्रतिशत का अधिकतम लाभ दिया गया है। इनके बीच 950 रुपये, 2000 रुपये और 2200 रुपये वेतनमान पा रहे कर्मचारियों को क्रमशः मात्र 10.8 प्रतिशत, 14.4 प्रतिशत और 28.2 प्रतिशत का लाभ दिया गया है, जबकि 7600 रुपये के वेतनमान पा रहे अधिकारियों को 41.1 प्रतिशत का लाभ दिया गया है। इससे स्पष्ट पता चलता है कि वेतन आयोग ने समाज के केवल सुखी-सम्पन्न तबकों को ही अधिक लाभ पहुंचाया है। क्या इससे साझा मोर्चा सरकार की "सामाजिक न्याय" के प्रति "प्रतिबद्धता" की कलई नही खुल जाती? इसका विद्रूप प्रहसन तो अपनी पूरी नग्नता के साथ तब और भी प्रकट हो जाता है जब यह वेतन आयोग कहता है कि "3.5 लाख पद रिक्त है। उन्हें सीधे खत्म कर देना चाहिए", और कि जूनियर स्टाफ में और किसी नियुक्ति को पूरी तरह "फ्रीज" कर देना चाहिए तथा यह भी कि दस वर्षों के भीतर श्रम-शक्ति में 30 प्रतिशत तक की छंटनी कर देनी चाहिए।

इस तरह पांचवें वेतन आयोग की यह रिपोर्ट अपने क्रूरतम रूप में मजदूरों और छोटे कर्मचारियों के विरोध में है, जो दरहकीकत **कोष-बैंक** नुस्खा-निर्देशित "उदारीकरण" और "संरचनात्मक समायोजन" से नाभिनालबद्ध है। और साझा मोर्चा सरकार के "सामाजिक न्याय के साथ विकास" की यही असलियत भी है। तभी तो प्रधानमंत्री का पदभार ग्रहण करने के तुरन्त बाद पूंजीपतियों की संस्था **सी.आई.आई.** के वार्षिक सम्मेलन में अपना प्रथम औपचारिक वक्तव्य देते हुए इन्द्र कुमार गुजराल ने यह स्पष्ट आश्वासन दिया कि आर्थिक सुधारों को उनकी "तार्किक परिणति" तक ले जाया जायेगा। वस्तुतः पांचवे वेतन आयोग की रिपोर्ट उसी दिशा में एक कदम है – "सामाजिक न्याय के साथ विकास" के लोकरंजक वाक्छल के साथ।

● आफताब आलम

भूल सुधार

दायित्वबोध के नवम्बर-'96--फरवरी '97 अंक में डी.वाई.सू और पी.वाई. चिङ का लेख 'चीन में मजदूर-किसान संश्रय : ग्रामीण विकास की एक रणनीति हमने 'मंथली रिव्यू' के मार्च 1991 अंक से साभार लिया था। लेख के साथ इसका उल्लेख छूट गया था, इसका हमें खेद है।

—संपादक

भूमण्डलीकरण मॉडल का मतलब है असमान विकास

चक्रवर्ती राघवन

आज व्यापार के तीव्र और व्यापक उदारीकरण, पूंजी के अन्तर्प्रवाह और विदेशी प्रत्यक्ष निवेश तथा राज्य की एकदम कम की जा चुकी भूमिका के नाम से भूमण्डलीकरण प्रक्रिया की, वर्तमान में, जो प्रभावी नव-उदारवादी धारा बह रही है उससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण की बात तो दूर, उल्टे, इसकी परिणति एक असमान विकास-प्रक्रिया के रूप में ही होनी है, और इससे विश्व-अर्थव्यवस्था की वर्तमान असमानताओं में और वृद्धि ही होने वाली है।

यह निष्कर्ष है **व्यापार** और **विकास** पर **राष्ट्रसंघ** द्वारा आयोजित एक **सम्मेलन** में **जेनेवा विश्वविद्यालय** के **प्रोफेसर पॉल बैरोख** और एक वरिष्ठ अर्थशास्त्री, **रिचर्ड कोजुल-राइट** का, जो उनके अभी हाल में ही **अंकटाड** (**यू.एन.सी.टी.ए.डी.**) द्वारा प्रकाशित विचार-विमर्श पत्र, "**ग्लोबलाइजेशन मिथस : सम हिस्टारिकल रेफलेक्शन्स आन इण्टिग्रेशन, इण्डस्ट्रियलाइजेशन ऐण्ड ग्रोथ इन द वर्ल्ड इकानमी**" में दिया गया है।

यह शोधपत्र उन तमाम ऐसे "मिथकों" को धराशायी कर देता है जो बड़े औद्योगिक देशों और उनके द्वारा नियंत्रित संस्थाओं द्वारा इस भूमण्डलीकरण के बारे में प्रचारित किये जाते रहे है, तथा पिछली शताब्दी और वर्तमान शताब्दी की भूमण्डलीकरण और एकीकरण प्रक्रियाओं के कुछ उभयनिष्ठ तत्वों और अन्तरों की परस्पर तुलना भी करता है।

इन दोनों लेखकों का कहना है कि उन्होंने जो साक्ष्य प्रस्तुत किये है वे "एक सर्वथा नये भूमण्डलीकृत हो रहे विश्व" के प्रति एक संदेहशील दृष्टि की ही पुष्टि करते है, और कि परम्परावादी अर्थशास्त्र की यह धारणा भी विश्वसनीय नही है कि यह दो **विश्वयुद्धों** और **राजकीय प्रबंधन** के एक विपर्यय-काल द्वारा खण्डित कर दी गयी एक भूमण्डलीय आर्थिक एकीकरण की धारा की महज फिर से वापसी भर है।

लेखकों का कहना है कि वित्त पूंजी का अन्तरराष्ट्रीयकरण जो पूर्ववर्ती भूमण्डलीकरण प्रक्रिया में उतना ही हो चुका था जितना कि वर्तमान समय में हो चुका है, असमान विकास की एक ऐसी प्रक्रिया से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है जो एकीकरण करने के बजाय विश्व अर्थव्यवस्था में मौजूद अन्तरों को प्रायः और बढ़ा ही रही है।

इस भूमण्डलीकरण/उदारीकरण की बहस में, जिसमें इस प्रक्रिया के नकारात्मक प्रभावों को लेकर **उत्तर** और **दक्षिण** के नागरिक समाज ज्यादा से ज्यादा संख्या में भागीदारी कर रहे है, एक बुनियादी मुद्दा यह है कि भूमण्डलीकरण का यह मॉडल बदहालीकरण और आर्थिक संकट की ओर ले जायेगा, या तीव्रतर विकास और अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण की ओर।

भूमण्डलीकरण/एकीकरण के नव-उदार आवर्तनों के कुछ अग्रणी तर्कशास्त्री वर्तमान प्रवृत्तियों को 1914 से पहले की उस उदार अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था वाले काल की वापसी के रूप में देखते हैं जो दो **विश्वयुद्धों** द्वारा छिन्न-भिन्न कर दी गयी थी।

भूमण्डलीकरण के इस शैलीगत आवर्तन की एक बहुप्रचारित विषयवस्तु यह है कि पूंजी की गतिशीलता, तकनोलॉजीकीय प्रगति और तीव्रतर हो चुकी बाजार-प्रतियोगिता एक ऐसी अप्रतिरोध्य शक्ति बन चुकी है कि अब घरेलू नीति-निर्माताओं के वश की बात नहीं कि वे इसे प्रभावित कर सकें, और तब देशों को चाहिए कि इसी प्रक्रिया से तालमेल बनाकर जुड़ें और लाभ उठायें, तथा जो इस प्रक्रिया में हाशिये पर फेंक दिये जायें वे अपने आपको ही दोषी समझें।

बैरोख और **कोजुल-राइट** का यह शोधपत्र पूरी उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान प्रचलित भूमण्डलीकरण के उन सभी मिथकों को धराशायी कर देता है जिन्हें, उस काल के लिए, उदाहरणस्वरूप, **जेफ्री सास** और **ऐण्ड्र वार्नर** ने **ब्रूकिंग पेपर्स** के बीसवीं वर्षगांठ के अवसर पर प्रकाशित संस्करण में, शैलीगत तथ्यों के रूप में विशेषीकृत किया था।

सास-बार्नर द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण के अनुसार, 1860 से लम्बी दूरी के यातायात और संचार के लिए तटकर अवरोधों में जो कमी की गयी तथा तकनोलॉजी में जो छलांगे लगी, उनकी बदौलत निर्यात में वृद्धि और व्यापारिक शेयरों में उछाल को प्रोत्साहन मिला। संसाधनों की सम्पन्नताओं की विभिन्नताओं ने **लातिन अमेरिका** तथा **अफ्रीका** और **एशिया** के अधिकतर विकासशील देशों को कच्चे माल के निर्यात और विनिर्मित माल के आयात के लिए विशिष्टीकृत करते हुए इस व्यापार के लिए एक सुदृढ़ **उत्तर-दक्षिण** आयाम सुनिश्चित कर दिया। स्वर्णमानक और परिवर्तनशील मुद्राओं का व्यापक चलन तथा **यूनाइटेड किंगडम** के वित्तीय नेतृत्व ने व्यापक और सापेक्षिक तौर पर स्थायी अन्तरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों को सुनिश्चितता प्रदान की, जिससे उभरते बाजारों में उच्चतर मुनाफा के अवसरों की तलाश से प्रेरित व्यापार-प्रवाहों को भारी अनुपूरक मदद मिली। पूंजीवादी संस्थाओं, मुक्त व्यापार और पूंजी प्रवाहों के इस व्यापक प्रसार ने विश्व अर्थव्यवस्था में विकास का एक नया संवेग पैदा कर दिया।

औद्योगीकरण कोर अमेरिकी अर्थव्यवस्थाओं के बाहर तेजी से फैला तथा **यूरोप** और **जापान** के उभरते बाजार एवं विकासशील भूभाग के कई कच्चे माल निर्यातक भी इसके दायरे में आ गये। एकीकरण के इस भूमण्डलीय युग का अन्त अप्रत्याशित था और बाहरी राजनीतिक एवं सैनिक झटकों के ही कारण हो सका।

सास-वार्नर की दृष्टि में, विकास और एकीकरण सुनिश्चित करने वाली एक नयी भूमण्डलीय पूंजीवादी प्रणाली का भविष्य समुचित नीतियों के चयन पर निर्भर है। अतः खासतौर से, विकासशील देशों को चाहिए कि वे व्यापार, पूंजीप्रवाह और **एफ डी आइ** (विदेशी प्रत्यक्ष निवेश) के क्षेत्रों में, अपने आय को उदारीकरण के एक तीव्रगामी और सुस्पष्ट वाहक के रूप में प्रतिबद्ध करें।

बैरोख और **कोजुल राइट** इन मिथकों में से कुछ को चुनौती देते है और टिप्पणी करते है कि भले ही व्यापार उन्नीसवीं शताब्दी की अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशिष्टता था, लेकिन इसके बावजूद यह व्यापार-उदारीकरण का कोई वैसा युग नही था जैसा कि समझा गया है।

●

व्यापार-उदारीकरण – जो 1860 के आसपास **एंग्लो-फ्रेंच संधि** से आरम्भ हुआ, जिसके बाद **फ्रांस** ने अन्य कइयों से संधियां की, जिनकी बदौलत समूचे यूरोपीय महाद्वीप में

''तटकर निःशेसीकरण'' किया गया और **एम एफ एन (मोस्ट फेवर्ड नेशन्स)** की शर्त को खत्म किया गया – एक लघु प्रहसन भर था जो बमुश्किल दो दशक ही चल पाया और वह भी यूरोप तक ही सीमित रहा।

लेकिन इसी बीच, 1866 से 1883 तक, बढ़ते तटकर प्रतिबन्धों की आड़ लेकर अमेरिका ने आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण की अवधि भी शुरू कर दी -- जिसके तहत आयात शुल्क औसतन 45 प्रतिशत कर दिया गया (25 प्रतिशत न्यूनतम दर और 60 प्रतिशत अधिकतम दर)। इस प्रकार **प्रथम विश्व युद्ध** के पहले 40 वर्षों के दौरान विश्व-अर्थव्यवस्था में अमेरिका के बढ़ते दबदबे के बावजूद, इसके अनुभव को भूमण्डलीय उदारीकरण के सबकों से बाहर निकाल देना ''निश्चय ही एक भारी'' दृष्टिदोष है जो एक **एंग्लो-सैक्शन मॉडल** की भ्रान्त धारणा को जारी रखे हुए है।

प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्ववर्ती तीन दशकों में विकसित देशों, और निश्चित तौर पर महाद्वीपीय यूरोप में, संरक्षण एक आम प्रवृत्ति बन चुकी थी। 1890 के दशक के आरम्भ से ही संरक्षणवाद एक अधिकाधिक सुस्पष्ट प्रवृत्ति बनता गया और 1913 तक तो सभी बड़े देशों ने एक संरक्षणवादी अवस्थिति ही अख्तियार कर ली। 1890 के दशक के अन्त में तटकर-नीति पर अपनी स्वायत्तता पुनः प्राप्त कर लेने के बाद जापान ने भी अपने नवजात उद्योगों के लिए तटकर संरक्षण लागू करना शुरू कर दिया।

1913 तक, विकसित दुनिया की व्यापार-नीति की तस्वीर थी: ''**संरक्षणवाद के समुद्र से घिरे उदारतावाद के टापू**'', जबकि विकासशील दुनिया की तस्वीर थी: ''**उदारतावाद के समुद्र में संरक्षण के टापू**''। विकासशील दुनिया का यह खुलापन औपनिवेशिक शासन का परिणाम था, जिसका सामान्य सिद्धान्त था औपनिवेशिक सत्ता के सभी उत्पादों के लिए पहुंच की खुली छूट।

अमेरिका द्वारा ब्रिटिश शासन को पूरी तरह खारिज कर दिये जाने के बाद जहां, एक तरफ, कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड को लातिन अमेरिका और पूर्वी एशिया के नाममात्र की स्वतंत्रता वाले देशों में, कुछ तटकर - स्वतंत्रता प्राप्त हुई, वहीं, दूसरी तरफ, पश्चिमी दबाव ने इन देशों पर कस्टमों और ड्यूटियों को खत्म करने और सभी प्रकार के तटकरों पर आमतौर पर ''पांच प्रतिशत का नियम'' लागू करने की असमान संधियां भी थोप दी।

इन सबके जरिये इन देशों के बाज़ारों को ब्रिटिश और यूरोपीय विनिर्मित मालों के लिए खोल दिया गया।

इसीलिए **बैरोख** और **कोजुल राइट** कहते हैं कि यह धारणा एक मिथ भर है कि 1870-1913 के दौरान बढ़ते व्यापार की चालक शक्ति उदारीकरण थी। वस्तुतः विश्व-व्यापार तो प्रभावी तौर पर यूरोप के भीतर का ही व्यापार था। 1899 तक, विनिर्माण-व्यापार प्रभावी तौर पर औद्योगिक देशों के भीतर ही चलता रहा, जो विनिर्माण में समूचे विश्व-व्यापार का 54 प्रतिशत था। यद्यपि प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, फिर भी औद्योगिक देशों के बीच यह व्यापार ज्यादातर उद्योग और फर्म का अन्दरूनी व्यापार ही था।

> इस प्रकार यह एक मिथ ही है कि अन्तरराष्ट्रीय उत्पादन वर्तमान भूमण्डलीकरण दौर की एक स्पष्ट विशिष्टता है। एफ डी आइ इसके पूर्ववर्ती दौर में भी तेजी से बढ़ा था जो देश से बाहर किये जाने वाले निवेश का एक-तिहाई तक हो गया था, तथा एफ डी आइ की वैश्विक राशि विश्व-उत्पाद का 9 प्रतिशत से भी अधिक हो चुकी थी। इस आंकड़े को तो 1990 के आरम्भ में ही नहीं पछाड़ा जा सका है।

विकासशील देशों में जाने वाले इस **एफ डी आई** का अधिकांश भाग प्राकृतिक संसाधनों की तलाश पर ही खर्च होता था, हालांकि इसका कुछ अंश अर्जेण्टीना और ब्राजील में रेलवे और दूसरे जनोपयोगी कार्यों हेतु अवरचनागत ढांचों (इन्फ्रास्ट्रक्चर्स) को तैयार करने के लिए भी खर्च किया गया। फ्रांसीसी और जर्मन एफ डी आई का ज्यादातर हिस्सा रूस जैसे देशों में विनिर्माण पर लगाया गया; ठीक यही काम कनाडा में अमेरिकी एफ डी आई ने किया। दरअसल एफ डी आई व्यापार का एक स्थानापन्न था, क्योंकि तटकर प्रतिबंध बढ़ते जा रहे थे।

टी एन सी -- निर्देशित भूमण्डलीय एकीकरण के वर्तमान चरण में अन्तरराष्ट्रीय उत्पादन का स्वरूप-निर्धारण करने वाले जो दबाव काम कर रहे हैं (चाहे व्यापार और एफ डी आई के घनिष्ठ सम्बन्धों के रूप में या किसी एक फर्म के भीतर ही श्रम के एकीकृत विभाजन के पहलुओं के रूप में), वे उन्हीं बड़ी फर्मों के विकास से सम्बन्धित होने का आभास दे रहे हैं जिनका विदेशों में फैलाव का उद्देश्य मुनाफा के अवसरों को अधिकाधिक सुनिश्चित करते जाना है।

लेकिन जैसे वर्तमान में, वैसे ही उन्नीसवीं शताब्दी के भूमण्डलीकरण में भी वित्तीय प्रवाहों का ही प्रभुत्व था। 1870 से 1913 के बीच, विदेशी पोर्टफोलियो निवेश की वृद्धि व्यापार, एफ डी आई और उत्पाद की वृद्धि से कहीं अधिक हो चुकी थी, और पश्चिमी यूरोप ही विदेशी पूंजी की आपूर्ति का प्रमुख स्रोत था।

प्रचलित मान्यता के अनुसार होना तो यह चाहिए था कि एक भूमण्डलीकृत बाज़ार राष्ट्रीय बचतों और निवेश के बीच के सम्बन्धों को खत्म कर देता और पूंजी के धनी देशों की बचतों का पूंजी के कंगाल देशों में पुनर्वितरण कर देता।

लेकिन उस अवधि में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। यदि हम बात को केवल ब्रिटिश एफ डी आई पर ही केन्द्रित न रखें, और पूरे विश्व की एफ डी आई का जायजा लें, तो देखेंगे कि उस वक्त विश्व - एफ डी आई का आधा हिस्सा ही **एशिया, लातिन अमेरिका** और **ओसानिया-अफ्रीका** को जाता था, जबकि बाकी आधा हिस्सा दूसरे विकसित देशों को चला जाता था, और इसका भी एक-चौथाई अकेले अमेरिका को ही चला जाता था, जो उस समय विश्व अर्थव्यवस्था का सबसे समृद्ध भाग था और लातिन अमेरिका को प्रवाहित होने वाली ज्यादातर पूंजी भी असमान रूप से ही वितरित होती थी।

यह भी एक मिथ ही है कि उस समय पूंजी-प्रवाह निजी निवेशकों की बाजार भावना, या जैसा कि **आइ एम एफ** ने 1994 के अपने **आर्थिक सर्वेक्षण** में तर्क रखा है, उन प्रतिभूति बाजारों से प्रभावित होता था जो उस वक्त प्रभावी थे।

उस वक्त बाण्डों के इश्यू दूसरे ऋण-उपायों पर हावी हो चुके थे और 1914 में ब्रिटिश और फ्रांसीसी एफ डी आई का आलम यह था कि उसका 70 प्रतिशत तो सरकारी और रेलवे बाण्डों पर ही चढ़ा हुआ था।

इस प्रकार, जैसा कि **बेरोख** और **कोजुल राइट** का कहना है, **प्रथम विश्व युद्ध** से पहले के भूमण्डलीकरण की बात ''मिथकों और वास्तविकताओं का एक घालमेल ही प्रतीत होती है।''

उस वक्त अन्तरराष्ट्रीय पूंजी के प्रवाह, अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के प्रवाहों की भांति ही, अत्यधिक घनीभूत हो चले थे और उनका अधिकांश भाग वे ही देश हजम कर रहे थे जो तत्कालीन विश्व-अर्थव्यवस्था में पहले से ही सबसे समृद्ध और गतिशील हो चुके थे। फिर भी विश्व अर्थव्यवस्था का गतिशील क्षेत्र, उद्योग, सबसे कम ही भूमण्डलीकृत हुआ था।

और यह धारणा भी भ्रामक ही है कि राष्ट्र-राज्य अन्तरराष्ट्रीय दबाव के बावजूद महत्वपूर्ण बने हुए थे। और प्रचलित मान्यता के विपरीत, **दो विश्वयुद्धों** के बीच की अवधि भी ठहराव की अवधि नहीं, बल्कि तीव्र विकास की अवधि थी, और 1920 के दशक में, पिछले किसी भी दशक के मुकाबले, कहीं अधिक तेजी

से विकास हुआ था, जिसकी बदौलत, 1929 तक, विश्व-उत्पाद में व्यापार का हिस्सा 1913 के हिस्से के समकक्ष जा पहुंचा था तथा एफ डी आई भी 1914 और 1938 के बीच उल्लेखनीय रूप से बढ़ चुका था।

ये प्रवृत्तियां एक हद तक इस मिथक की ही कलई खोलती है कि भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था के विघटन को महज उन अविवेकपूर्ण राजनीतिक कारकों द्वारा व्याख्यायित किया जा सकता है जो **प्रथम विश्व युद्ध** और उसके प्रभावों द्वारा उत्पन्न कर दिये गये थे। कुल मिलाकर, **दो विश्वयुद्धों** के मध्यवर्ती काल को राजनीतिक अर्थव्यवस्था में घरेलू और अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक कारकों का एक जटिल अंतर्ग्रन्थन था।

लेखक उस काल के औद्योगीकरण और अन्तरराष्ट्रीय श्रम-विभाजन (जिसमें **दक्षिण** कच्चे माल का निर्यात और विनिर्मित माल का आयात कर रहा था) की इस गुलाबी तस्वीर को चुनौती देते हैं कि इसमें हर कोई लाभ कमा रहा था और आगे बढ़ रहा था।

उस काल में औद्योगीकरण ही विकास की असली चालक शक्ति था। लेकिन, जहां 1870 में कोई भी देश प्रति व्यक्ति इतना भी औद्योगीकरण नहीं हासिल कर पाया था कि वह **यूनाइटेड किंगडम** के औद्योगीकरण के स्तर के आधे के भी बराबर कहा जा सके, वहीं 1870-1913 के बीच यह हो गया कि अब ब्रिटेन ही एक मात्र औद्योगिक शक्ति न रहा और 1913 तक अमेरिका और जर्मनी विश्व उत्पाद के बड़े योगदानकर्ता बन गये। पांच अर्थव्यवस्थाओं – यूनाइटेड किंगडम, बेल्जियम, स्विट्ज़रलैण्ड, जर्मनी और स्वीडेन का स्तर, उस समय तक अग्रणी औद्योगिक अर्थव्यवस्था बन चुके अमेरिका के स्तर के आधे से कुछ ही अधिक रह गया था। लेकिन दक्षिणी और पूर्वी यूरोप में विकास की गति कमजोर थी, फ्रांस, इटली, रूस और आस्ट्रो-हंगरी के कुछ-कुछ हिस्सों में औद्योगिक विकास जरूर आगे बढ़ा था, पर इतना नहीं था कि वे दूसरी नयी औद्योगीकृत हो रही अर्थव्यवस्थाओं की तीव्र विकास दर के बराबर पहुंच सकें और उस दर को बनाये रख सकें। और जब आर्थिक और औद्योगिक एकाधिकार वाले ब्रिटेन का सापेक्षिक पतन अपरिहार्य हो गया था, तो औद्योगीकरण के रास्ते के बारे में कुछ भी नैसर्गिक या पूर्वानुमेय नहीं रह गया था।

औद्योगीकरण के इन असमान प्रतिरूपों की व्याख्या मानव-पूंजी के रूप में संसाधनों की सम्पन्नताओं के आधार पर नहीं, बल्कि उस ढंग के आधार पर ही सम्भव है जिसके द्वारा कुछ बाद में औद्योगिक विकास करने वाले देश संस्थागत खामियों को दूर करने तथा निवेश की ऊंची दरों, तकनीकी प्रगति और उत्पादकता में तीव्र वृद्धि की बदौलत आगे बढ़ते जाने की एक प्रक्रिया शुरू करने में समर्थ हुए थे। और सफल होने वाले इन सभी परवर्ती औद्योगिक विकासकर्ता देशों की खासियत यह थी कि उन्होंने अपने राजकीय ढांचों में सुधार किये थे जिनकी बदौलत नवजात उद्योगों को संरक्षण देकर और औद्योगिक नीति के अन्य रूपों को अपनाकर पूंजी-संचय और तकनोलॉजीकीय प्रगति को प्रोत्साहित करने में मदद मिली थी।

विकसित देशों में असमानताएं जिस तरह से स्पष्ट हो चुकी थीं कि ठीक उसी तरह से **उत्तर** और **दक्षिण** के बीच औद्योगिक गतिविधियों का ध्रुवीकरण भी स्पष्ट हो चुका था।

दक्षिण का गैर-औद्योगीकरण तो भूमण्डलीय एकीकरण के इस काल के पहले ही से होता आ रहा था, परन्तु यह प्रक्रिया इस एकीकरण की अवधि में न सिर्फ जारी रही, बल्कि तीव्र से तीव्रतर होती गयी।

1860 और 1913 के बीच विश्व विनिर्माण उत्पादन में विकासशील देशों का हिस्सा एक-तिहाई से अधिक स्तर से गिरकर दसवें हिस्से से भी कम रह गया।

इसमें कोई संदेह नहीं कि दक्षिण का यह गैर-औद्योगीकरण उन टेक्सटाइल और कपड़ा उद्योगों में यूरोपीय विनिर्मित आयातों के एक भारी प्रवाह का परिणाम था, जहां मुक्त व्यापार ने स्थानीय दस्तकारों और शिल्प-उत्पादनकर्ताओं

शहीदे आज़म भगतसिंह के शहादत दिवस (23 मार्च) के अवसर पर.....

"हमारा यह भी विश्वास है कि साम्राज्यवाद एक बड़ी डाकेजनी की साजिश के अलावा कुछ नहीं। साम्राज्यवाद मनुष्य के हाथों मनुष्य के और राष्ट्र के शोषण का चरम है। साम्राज्यवादी अपने हितों, और लूटने की योजनाओं को पूरा करने के लिए न सिर्फ न्यायालयों एवं कानून को कत्ल करते है, बल्कि भंयकर हत्याकाण्ड भी आयोजित करते है। अपने शोषण को पूरा करने के लिए जंग जैसे खौफनाक अपराध भी करते है। जहां कहीं लोग उनकी नादिरशाही शोषणकारी मांगों को स्वीकार न करें या चुपचाप उनकी ध्वस्त कर देने वाली और घृणा योग्य साजिशों को मानने से इंकार कर दें, तो वह निरपराधियों का खून बहाने से संकोच नहीं करते। शान्ति-व्यवस्था की आड़ में वे शान्ति भंग करते है।"

– भगतसिंह

(विशेष ट्रिब्यूनल के सामने बयान 5 मई, 1930)

को अपेक्षाकृत अधिक पूंजी-सघनता और अधिक उत्पादकता वाले उत्तरी उत्पादनकर्ताओं के विनाशकारी प्रतियोगी अंधड़ में झोंक दिया था।

●

उस काल का एक और प्रचलित मिथ यह है कि तुलनात्मक लाभ की दृष्टि से प्राथमिक मालों के निर्यात ने अर्थव्यवस्था के कई पक्षों के विकास के लिए सर्वोत्तम रास्ता प्रदान किया।

इस मिथक में सच्चाई का एक अंश जरूर है। 1913 में प्राथमिक मालों के पांच निर्यातक देश दुनिया के सबसे समृद्ध देशों की श्रेणी में थे। 1960 की डालर-दर के आधार समृद्धि का प्रति व्यक्ति अनुपात अमेरिका में 1358 डालर, कनाडा में 1112 डालर, अर्जेण्टीना में 1040 डालर, आस्ट्रेलिया में 1096 डालर डेनमार्क में 883 डालर, और न्यूजीलैण्ड में 756 डालर था। उस वक्त सभी विकसित देशों में प्रति व्यक्ति यह अनुपात औसतन 662 डालर था।

यद्यपि श्रम के अन्तरराष्ट्रीय विभाजन में उस वक्त इन अर्थव्यवस्थाओं का स्थल कृषि उत्पादों के निर्यात से ही निर्धारित होता था, फिर भी इनकी निकट से जांच पड़ताल करने पर यह संदेह ही उभरता है कि प्राथमिक क्षेत्र से होने वाली निर्यात-वृद्धि के चलते अधिकांश दुनिया को शायद ही कोई अनुकूल रणनीतिक लाभ मिल पाया था।

इसमें पहली बात तो यह थी कि ये देश भूमण्डलीकरण काल के आरम्भ होने के पहले ही सापेक्षिक समृद्धि हासिल कर चुके थे। और दूसरी बात यह है कि भूमण्डलीकरण के वर्तमान काल के स्पष्टतः विपरीत, उस समय प्राथमिक उत्पादनकर्ताओं को अपवादस्वरूप चीनी उत्पादनकर्ताओं को छोड़कर -- व्यापार की शर्तों में खास तौर से एक अनुकूल परिवर्तन का लाभ मिला था।

लेकिन, जैसा कि **बैरोख** और **कोजुल राइट** का कहना है, प्राथमिक उत्पादों में विशिष्टीकरण की सीमाओं तथा आर्थिक विकास और प्रगति पर औद्योगीकरण के अपेक्षाकृत अधिक गत्यात्मक संघात का सबसे अच्छा प्रमाण इस तथ्य में निहित है कि जिन अर्थव्यवस्थाओं ने उस समय अपना एक सफल औद्योगिक आधार स्थापित कर लिया था, वे सभी के सभी समृद्ध बन चुके थे, जबकि प्राथमिक मालों के सभी निर्यातक देशों में उत्तरी अमेरिका को छोड़कर **-सकल राष्ट्रीय उत्पाद** में गिरावट ही परिलक्षित हुई थी। न्यूजीलैण्ड जो 1880 के आसपास छठवां या सातवां समृद्ध देश था, ह्रासमान होकर 1990 तक बीसवें स्थल पर चला गया, तथा अर्जेण्टीना का ह्रास तो और भी अधिक हुआ है।

वर्तमान समय में,

> भूमण्डलीकरण से यह उम्मीद लगायी जा रही है कि यह विश्व अर्थव्यवस्था में विकास को एक नयी गति देगा -- और कि विश्व अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास और एकीकरण में एकमात्र सबसे बड़ी बाधा यही है कि राज्य एक राष्ट्रीय नीति पर जोर दिये हुए हैं, जिससे उनके हाशिये पर चले जाने और ठहरावग्रस्त हो जाने का ही रास्ता तैयार हो जाता है।

लेकिन पिछले दो दशकों से विश्व अर्थव्यवस्था एक स्पष्टतः मंदतर विकास के ही रास्ते पर चलती दिखायी दे रही है, और अधिकतर उपलब्ध साक्ष्य देशों के बीच एकीकरण के बजाय विभेदीकरण का ही संकेत दे रहे हैं। भले ही 1870 से 1913 के बीच विकास-दर में वृद्धि होती रही थी, लेकिन तब भी यह उतनी प्रभावी नहीं थी जितनी कि 1945 के बाद से हुई। और भले ही 1890 से 1913 तक की अवधि में विकासशील देशों की विकास-दरों में उछाल होता रहा, लेकिन तब भी विकसित देशों की विकास दरों और इनकी विकास-दरों के बीच की खाई भरी नहीं, और न उस काल में पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था में कोई एकीकरण ही हुआ था। आज की भांति ही उन्नीसवीं शताब्दी के भूमण्डलीकरण की परिघटना भी विभेदीकरण से ही अभिचिन्हित थी।

1913 से पहले आधी शताब्दी तक व्यापार उदारीकरण ने विकास को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया था। कम से कम विश्व के नये औद्योगीकरण वाले भागों में निर्यात में तीव्र विकास तो संरक्षण के चढ़ते ज्वार के विरुद्ध ही हुआ।

व्यापार प्रवाहों में प्राथमिक उत्पादों के व्यापार की ही प्रधानता थी, जबकि गत्यात्मक क्षेत्र के रूप में, उद्योग, भूमण्डलीकरण में उसी सीमा तक भागीदारी नहीं कर रहा था। आर्थिक विकास ने अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि तो की लेकिन अन्तरराष्ट्रीय व्यापार की वृद्धि ने आर्थिक विकास को आगे नहीं बढ़ाया।

और भले ही एफ डी आई प्राथमिक और सम्बन्धित सेवाओं में घनीभूत हुआ था, लेकिन एक चालक शक्ति के रूप में इसकी भूमिका थी -- इस पर बहुत कम ही विश्वास किया जा सकता है।

अमेरिका और कनाडा दोनों की ही समृद्ध अर्थव्यवस्थाएं एफ डी आइ के सबसे बड़े आपूर्तिकर्ताओं में से थीं, लेकिन अमेरिका में पूंजी निर्माण में एफ डी आइ का एक मामूली योगदान ही था। हालांकि कनाडा में यह योगदान काफी अधिक था, फिर भी यह वास्तविक महत्व उस काल के खत्म होने से पहले न ग्रहण कर सका।

और भले ही लातिन अमेरिका के घरेलू निवेश में एफ डी आइ का एक काफी बड़ा हिस्सा था, फिर भी यह एक अधिक विकास दर स्थापित करने में अक्षम ही था।

> अतः विश्व अर्थव्यवस्था में टी एन सी की बड़े पैमाने पर उपस्थिति ही एफ डी आई को आर्थिक विकास की एक चालक शक्ति के रूप में स्थापित नहीं कर देती। इसके बजाय, यही ज्यादा सम्भव लगता है कि एफ डी आई, व्यापार की भांति ही, विश्व अर्थव्यवस्था में एक असमान विकास के ढर्रे को ही और मजबूती प्रदान करने में सहायक बन रहा था।

●

आर्थिक विकास का एक अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण निर्धारक नयी तकनोलॉजियों को पैदा करने और खपाने की क्षमता के रूप में होता है, परन्तु उस वक्त केवल कुछ ही देश तकनोलॉजी में अग्रणी भूमिका निभाने की हैसियत रखते थे। अतः अधिकतर देशों के लिए सफल तीव्र विकास नयी तकनोलॉजियों को प्राप्त करने की उनकी क्षमता और इस सुनिश्चितता पर निर्भर करता था कि ये नयी तकनोलॉजियां उनकी उत्पादकता वृद्धि के जरिये उनके उद्योगों की प्रतियोगी क्षमता बढ़ाने में मदद करेंगी।

लेकिन भले ही तकनोलॉजिकीय प्रगति आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण स्रोत थी, फिर भी इसे बाहर से नहीं लाया जा सकता था। इसीलिए उस काल में राज्य तकनोलॉजिकीय परिवर्तन के अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय अभिकर्ता बने यह परिवर्तन राष्ट्रीय परिवहन के संगठन और दूरसंचार के ताने-बाने के रूप में सबसे अधिक दृष्टिगोचर होता था।

राज्य नये-नये उत्पादों की मांग पैदा करने के जरिये तकनोलॉजीकीय प्रगति के क्षेत्र में और उभरते सैन्य उद्यमों में भी, अधिकाधिक संलग्न होते गये थे। और चूंकि एक महत्वपूर्ण सीमा तक तकनोलॉजीकीय परिवर्तन पूंजीगत मालों के उत्पादन के लिए ही होता था, इसीलिए यह

(शेष पृष्ठ 58 पर)

भूमण्डलीकरण के अश्वमेध में बेरोजगारों की फौज

वर्तमान दशक के आरम्भ से जैसे ही भूमण्डलीकरण के अवश्वमेधी तुरंग ने दौड़ना शुरू किया है, वैसे ही न सिर्फ पिछड़े और विकासशील देशों में, बल्कि औद्योगिक रूप से विकसित देशों में भी बेरोजगारों की फौज अभूतपूर्व तेजी से बढ़ने लगी है। यहां पर कुछ आंकड़ों के जरिए बात को स्पष्ट किया जा सकता है।

आर्थिक सहकार और विकास संगठन (ओ ई सी डी) के देशों में एक सरकारी अनुमान के अनुसार, बेरोजगारों की संख्या 3.5 करोड़ है जो 1970 के दशक के बेरोजगारी के आंकड़ों से तीन गुनी है। यह स्थिति तब है जबकि इन देशों में जनसंख्या-वृद्धि की दर लगभग शून्य हो चुकी है। सिर्फ चार वर्षों की अवधि में, यानी 1990 से 1994 तक के बीच, बेरोजगारों की कतारों में एक करोड़ की वृद्धि हो चुकी है। फिर भी ये सरकारी आंकड़े वास्तविक स्थिति को नहीं प्रस्तुत करते, कारण कि बेरोजगारों की कुल रिपोर्ट की गयी संख्या (35 करोड़) में बेरोजगारों की कई श्रेणियों की गणना ही नहीं की गयी है। जैसा कि एरिक टासैण्ट और डेनिस कोमैन ने हिसाब लगाया है; आर्थिक सहकार और विकास संगठन (ओ ई सी डी) के देशों में बेरोजगारों की वास्तविक संख्या 6 से 7 करोड़ के बीच है। इन देशों में आर्थिक पुनर्गठन की जो प्रक्रिया चल रही है, उसके तहत अकेले अमेरिका में दस लाख से बीस लाख प्रति वर्ष की दर से अगले 15-20 वर्षों में 2.5 करोड़ लोग और बेरोजगार हो जायेंगे। परामर्शदात्री फर्म के एक निदेशक का कहना है : "हम भलीभांति जानते हैं कि नौकरियां क्यों खत्म की जा रही हैं, पर हम यह देख पाने में अक्षम हैं कि नयी नौकरियां कहां पैदा की जायें।"

भूतपूर्व पूर्वी शिविर के देशों में 1990 के दशक के आरम्भ से ही बेरोजगारी तेजी से बढ़ती गयी है। विश्वबैंक की मंशा है कि इन देशों में बेरोजगारी 20 प्रतिशत तक पहुंच जानी चाहिए, जैसा कि अप्रैल 1992 में ट्यूरिन में पूर्वी यूरोप में समायोजन के सवाल पर आयोजित एक सेमिनार के दौरान विश्वबैंक के दो प्रतिनिधियों में से एक ने यह उन्मादी उद्गार प्रकट भी कर दिया था : "क्या हमें मध्य और पूर्वी यूरोप में समायोजन के क्षेत्र में अपनी सफलता का मूल्यांकन बेरोजगारी की दर घटाने के बजाय उसे बढ़ाने के आधार पर नहीं करना चाहिए?"

रूसी संघ में 1994 के अन्त से 1995 के आरम्भ तक की अवधि में सरकारी तौर पर पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या 16 लाख 88 हजार थी। परन्तु वास्तविक स्थिति इससे पूरी तरह भिन्न है। ज्यॉ मेरी शोविए ने प्रेस और ट्रेड यूनियन स्रोतों के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि इस दौरान बेरोजगारों की संख्या लगभग एक करोड़ बीस लाख थी जो कुल श्रमशक्ति का करीब साढ़े पन्द्रह प्रतिशत है। लेकिन विश्वबैंक के प्रतिनिधि अपनी उम्मीदों पर खतरा महसूस कर रहे है, क्योंकि बेरोजगारी बढ़ने की यह दर उनकी मंशा से कम मालूम पड़ रही है।

तीसरी दुनिया के देशों में बेरोजगारी के आंकड़े सरकारी स्तर पर जान बूझकर कम करके पेश किये जाते हैं। एक अनुमान के अनुसार, इन देशों में प्रत्येक व्यक्ति को नियमित रोजगार देने के लिए कम से कम एक अरब नये रोजगार पैदा करने की जरूरत है, जबकि संरचनात्मक समायोजन ने बेरोजगारी में और अधिक बढ़ोत्तरी ही की है। इसके कई कारण हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार में भारी कटौती की जा चुकी है। उदाहरण के तौर पर, जाइरे की सरकार ने विश्वबैंक के निर्देश पर मई-जून 1995 में सार्वजनिक सेवा से तीन लाख लोगों की छंटनी कर दी थी। आर्थिक उदारीकरण के चलते जो घरेलू आर्थिक मंदी पैदा हुई है उसने भी रोजगार में भारी कमी कर दी है। मैक्सिको इसका ज्वलंत उदाहरण है, जहां आर्थिक मंदी से निपटने के नाम पर दिसम्बर 1994 और मार्च 1995 के बीच 25 लाख लोगों के रोजगार छीन लिये गये। तीसरा कारण "प्रत्येक चीज निर्यात के लिए" वाली नीति का लागू किया जाना है। इसका खासतौर से सबसे बुरा प्रभाव कृषिक्षेत्र के रोजगार पर पड़ रहा है, जहां से भारी गरीब खेतिहर और मजदूर आबादी अपनी जगह-जमीन और रोजी-रोटी से उजड़ कर शहरी क्षेत्रों की धूल फांकने के लिए भागने पर मजबूर हो रही है।

विश्व बैंक ने तीसरी दुनिया के देशों में 80 सेंट (एक डालर से कम) प्रतिदिन की आय को गरीबी-रेखा का एक मनमाना पैमाना मानकर यह अनुमान लगाया है कि इन देशों में 1.3 अरब आबादी गरीबी-रेखा से नीचे है, जबकि कटु सच्चाई यह है कि इन देशों की बहुसंख्यक आबादी गरीबी-रेखा से नीचे, कुपोषित, अल्पपोषित और असुरक्षित जीवन जीने को मजबूर है। परन्तु विश्व बैंक ठीक इसी पर पर्दा डालने की कोशिश करता है। आज वस्तुस्थिति तो यह है कि संरचनात्मक समायोजन, आर्थिक उदारीकरण या, एक शब्द में, भूमण्डलीकरण के चलते बुनियादी जरूरत की चीजों और सेवाओं की कीमतें जिस तेजी से बढ़ चुकी है उन्हें देखते हुए 2 या 3 डालर प्रतिदिन की नियमित आय भी एक ठीक-ठाक घर में रहने और ठीक-ठाक ढंग से खाने-पहनने के लिए बहुत पर्याप्त नहीं है -- फिर तो अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य-चिकित्सा और सांस्कृतिक उन्नति की तो बात ही दीगर है। परन्तु संरचनात्मक समायोजन सम्बन्धी अपनी नुस्खा-निर्देशित नीतियों की बेपनाह विफलता पर पर्दा डालने की गरज से ही विश्व बैंक 80 सेण्ट प्रतिदिन की आय को गरीबी-रेखा का पैमाना मानता है, ताकि बदतर जीवन जी रही भारी आबादी की संख्या को कम से कम करके दिखाया जा सके।

आज "रोजगार विहीन विकास" और "बेरोजगारी की एक प्राकृतिक दर" (बनाये रखना या कि बढ़ाते रहना!) भूमण्डलीकरण के केन्द्रीय नारे बन चुके हैं। वैसे भी रोजगार देना पूंजीवाद की कोई भलमनसाहत नहीं बल्कि मुनाफा-केन्द्रित जरूरत रही है। परन्तु आज वह जिस खुली नग्नता के साथ बेरोजगारी-वृद्धि की वकालत कर रही है उससे उसकी आन्तरिक संकटजनित जरूरत और इलेक्ट्रानिक-साइबरनेटिक स्वचालन के आधार पर अभूतपूर्व मुनाफा और अति मुनाफा बटोर लेने की उसकी चरमतम प्रतिक्रियावादी या एक शब्द में कहें तो उसकी अभूतपूर्व मानवता-द्रोही हवस का पता चलता है। वर्तमान भूमण्डलीकरण उसकी समस्त ऐतिहासिक पैशाचिकता का क्रूरतम और वीभत्सतम चरित्र है।

● विश्वमित्र

अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस (8 मार्च) के अवसर पर

मत बहलाओ हमें इस फरेब से

केर्स्ती एरिक्सन नार्वे की एक माओवादी कम्युनिस्ट पार्टी, डब्ल्यू. सी.पी. (मा-ले) की अध्यक्ष रही हैं। अभी भी वे पार्टी के अतिरिक्त वहां के नारी-मुक्ति आंदोलन की अगली कतारों में सक्रिय हैं। साथ ही वे एक कवयित्री भी हैं और मनोवैज्ञानिक भी।

'दायित्वबोध' के पिछले अंक में हमने सुश्री एरिक्सन की चर्चित पुस्तक 'सिस्टर्स-कामरेड्स' का परिचय प्रस्तुत किया था। इस बार प्रस्तुत है उनकी ओजपूर्ण-आवेगपूर्ण विद्रोही कविता! - **सम्पादक**

शर्म
बस जाती है खुद प्रताड़ितों के दिलों-दिमाग में
कि जो पीटा गया है
उसी ने किया होगा कोई अपराध
कि खून जो रिस रहा है घावों से
अपवित्र है
कि दोषी है अपमानित कुचली देह ही।
शर्म
पैठती रही है खुद प्रताड़ितों के दिलों-दिमाग में
दशाब्दियां शताब्दियों में —
शताब्दियां सहस्राब्दियों में बदल गईं
क्या कभी इसका अन्त न होगा?

बहनो, कामरेडो, स्त्रियो
अब उमड़ रहा है हमारा गुस्सा
चढ़ रहा है यह उफनते ज्वार की तरह
हमारे अन्तरतम के गहन अंधकार से
उठ रहा है यह
सारी धधकती ज्वालाओं से
तपती राख को लेकर
लेकर उठ रहा है वे आघात,
वे चीखें
दिलों को कुचलती बूटों की ठोकरें
और वे असंख्य नष्ट हुए,
अनजिये जीवन
जिनके लिए नहीं हो सकती
कोई भी सांत्वना।

हमारा आक्रोश चढ़ता ही जा रहा है
यह है हमारा प्रबल उपहार
इस दुनिया को
उस प्यार के साथ
जिसके बदले में कभी न मिला कोई प्यार
जो इतना विस्तीर्ण है
कि पुरुष की छाती
बहुत छोटी पड़ गई इसके लिए
अब हम बांटते हैं इसे आपस में
और देते हैं इस धरती को
और इस पर बसने वाले लोगों को
काले, गोरे, पीले, भूरे लोगों को
देते हैं उस युवा रेंडियर को
जो झेलता है अनरक्षित
घनघोर वर्षा के थपेड़े

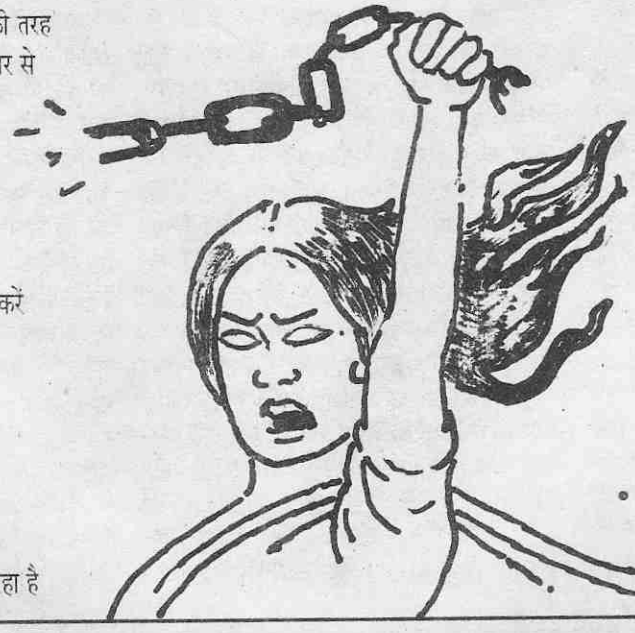

गहरी सांसे भरते समुद्र को
और उन अनाम अनदेखे फूलों को
जो खिलते हैं अमेजन के घने जंगल में।

मत बहलाओं हमें मामूली बातों से
नहीं चाहिए कुछ भी अधकचरा
मत कहो हमसे एहसानमंद होने को!
हम यहां आये हैं
अपने भीतर की आग की
ज्वालाएं लिये
दर्द लिए सारे आघातों
और दिलों को कुचलती बूटों की ठोकरों का
हमारे पास है उन सारे अनजिये जीवनों
की तड़प
और प्रचण्ड उत्ताप उस प्यार का
जिसके बदले में नहीं मिला कभी प्यार।

मत खड़े हो हमारी राह में
जब हम आयेंगे बदल डालने को
यह दुनिया
प्रचण्ड वज्राघातों के साथ
जब हम उगायेंगे अपने ढंग से
प्यार और जिन्दगी की नई फसल
मत खड़े हो हमारी राह में
क्योंकि हम हैं स्वामी
आने वाले कल के।

• अंग्रेजी अनुवाद : फ्रांसेस्का एम. निकोलस
• हिन्दी अनुवाद : विश्वनाथ मिश्र

मुक्त बाजार की नारकीय गुलामी भोगती स्त्रियां

● कात्यायनी

अभी पिछले ही वर्ष अमेरिका में प्रकाशित एक पुस्तक ''साइलेण्ट रिवोल्यूशन : द राइज ऑफ मार्केट इकोनॉमिक्स इन लैटिन अमेरिका'' (मंथली रिव्यू प्रेस, न्यूयार्क, 1995) में अर्थशास्त्री डंकन ग्रीन ने लातिन अमेरिकी देशों में मुक्त-बाजार मॉडल के व्यापक आर्थिक सफलताओं का उल्लेख करते हुए तफसीलवार यह चर्चा किया है कि किस तरह इन ''सफलताओं'' ने गरीबों पर ध्वंसकारी प्रभाव छोड़े हैं तथा समाज के मुट्ठीभर कुलीनों की ''खरीदने की आजादी'', विकल्प और क्षमता की भारी कीमत सामाजिक-पारिस्थितिक विघटन के रूप में चुकानी पड़ी है।

दुनिया के अधिकांश समाजशास्त्री आज इस बात पर एकमत हैं कि मुक्त बाजार-तंत्र जनित सामाजिक-आर्थिक दबावों का सबसे अधिक बोझ स्त्रियों पर और समाज के सबसे कमजोर संस्तरों पर पड़ रहा है। अभी लगभग पच्चीस वर्षों पहले तक तीसरी दुनिया की औरतें अन्तरराष्ट्रीय पूंजी द्वारा विनियोजन के लिए इस तरह तैयार श्रम-शक्ति के रूप में उपलब्ध नहीं थीं। वे प्रधानतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा थीं तथा घरों, खेतों और स्थानीय घरेलू उद्योगों में काम करती थीं। एनेट फ्यूण्टेस और बारबरा एहरेनराइश के अनुसार, ''धीरे-धीरे कई तीसरी दुनिया के देशों की सरकारों ने विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष जैसी एजेंसियों के सुझावों पर आधारित, ऐसी विकास योजनाएं अपनाईं जो बड़े पैमाने के उद्योगों तथा कृषि उद्योगों को प्रधानता देती थीं। आज पुरानी परम्परागत खेती की व्यवस्थाएं और उनके सामुदायिक रूप खत्म हो रहे हैं। कई परिवारों को अपनी जमीन से हाथ धोना पड़ रहा है और स्थानीय उद्यम तबाह हो रहे हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के बिखरने के साथ कई परिवार रोजी-रोटी कमाने की गरज से अपनी लड़कियों को शहर या मुक्त व्यापार क्षेत्रों में काम ढूंढने के लिए भेजने लगे हैं।'' (विमेन इन दि ग्लोबल फैक्टरी)

मुक्त व्यापार क्षेत्र एक नई चीज है जिनकी ''निर्यातोन्मुख विकास'' में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। ये हर तरह की अवरचनात्मक सुविधाओं से युक्त औद्योगिक बस्तियां होती हैं जिन्हें एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन भी कहते हैं। यहां मजदूरों के सोने की जगहें भी बनी होती हैं। ये क्षेत्र पिछड़े देशों के सस्ते श्रम व कच्चे माल का निर्यातोन्मुख उत्पादन करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए आरक्षित होते हैं और बहुराष्ट्रीय निगमों को प्राप्त अनेक विशेष छूटों के अतिरिक्त उन्हीं की आवश्यकताओं के अनुरूप इनकी पूरी व्यवस्था औपनिवेशिक किस्म की होती है। कोई देशी कम्पनी भी इस क्षेत्र में तभी घुस सकती है जबकि वह किसी विदेशी कम्पनी के साथ संयुक्त पूंजी-निवेश करे। प्रायः कंटीले तार लगी ऊंची दीवारों से घिरी इन औद्योगिक बस्तियों का नजारा किसी नात्सी श्रम-शिविर जैसा लगता है जहां ट्रेड यूनियन गतिविधियों, राजनीतिक कार्रवाइयों और खुली आवाजाही पर प्रतिबंध रहता है तथा जांच और निगरानी के लिए तरह-तरह के अर्द्धसैनिक बल तैनात रहते हैं। ऐसी ही बंदिशें आज भारत के आधुनिक औद्योगिक उपक्रमों में भी दिखाई देने लगी है और अब तो जापानी औद्योगिक बस्तियों के रूप में ऐसे मुक्त व्यापार क्षेत्र (एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन) बनाने का निर्णय भी लिया जा चुका है। गौरतलब बात यह भी है कि खाद्य-प्रसंस्करण से लेकर कई तरह की उपभोक्ता सामग्री और इलेक्ट्रानिक सामान बनाने वाली दुनिया की अग्रतम बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की ऐसी इकाइयां हमारे देश में भी काम कर रही हैं जो सिर्फ निर्यात के लिए उत्पादन करती हैं। इन इकाइयों में बेहद कम मजदूरी पर पुरुष और स्त्रियां काम करती हैं। कुछ इकाइयां ऐसी भी हैं जो ठेके पर घरेलू स्त्रियों से या उन्हें काम पर रखने वाले लघु औद्योगिक इकाइयों से काम कराती हैं और इस तरह उन्हें असंगठित मजदूरों का श्रम (जिनमें भारी आबादी स्त्रियों की होती है) बेहद सस्ती दरों पर हासिल हो जाता है।

तीसरी दुनिया के देशों में आज कई सौ मुक्त व्यापार क्षेत्र (एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन) मौजूद हैं और सिर्फ इन क्षेत्रों की औद्योगिक इकाइयों में ही काम करने वाले मजदूरों की संख्या अनुमानतः 50 लाख के आसपास है। इसके अतिरिक्त बहुराष्ट्रीय नियंत्रण में चल रहे कारखानों और शिकमी ठेके (सब-कण्ट्रेक्ट) पर चलने वाले देशी उद्यमों में भी लाखों लोग काम करते हैं। एनेट और बारबरा के शब्दों में, ''हल्के या बारीक पुर्जों की असेम्बली लाइन पर पुर्जे जोड़ने का काम करने वालों में 80-90 प्रतिशत स्त्रियां ही होती हैं। इतनी भारी मात्रा में औरत मजदूरों की भरती विदेशी नियंत्रण में चल रहे औद्योगीकरण के प्रारम्भिक दौर के ढंग से बिल्कुल भिन्न परिस्थिति है। हाल तक आर्थिक विकास का मतलब होता था -- भारी उद्योग, जिसमें खनन, निर्माण आदि शामिल थे। ये उद्योग पुरुषों को ज्यादा काम के अवसर प्रदान करते थे। पुराने परम्परागत खेतिहर समाज की अपेक्षा इस व्यवस्था में औरतों की आर्थिक स्थिति में गिरावट आ गई थी। लेकिन अब बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हल्के तथा महीन पुर्जे जोड़ने के काम को औरतों का काम समझती हैं, उससे चाहे बार्बी गुड़िया बनती हो या कम्प्यूटर के पुर्जे।''

मेक्सिको की माकीलाडोरा फैक्टरियों में काम करने वाली मजदूरिनें मुक्त बाजार की गुलामी भोगती स्त्रियों का नग्नतम -- अमानवीयतम उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। पहले मेक्सिको के मजदूर बड़े भारी पैमाने पर परमिट के तहत अमेरिका में आकर ठेके पर, अस्थायी तौर पर या दिहाड़ी पर खेतों, कृषि-उद्यमों और उद्योगों में काम किया करते थे। साठ के दशक में जब सस्ते श्रम की तलाश में अमेरिकी पूंजीपतियों ने अपने उद्योगों के श्रम-संकेन्द्रित हिस्सों को तीसरी दुनिया के देशों में स्थानान्तरित करना शुरू किया तो अमेरिका में श्रमिकों की बेरोजगारी बढ़ने लगी और घरेलू असंतोष से भयभीत अमेरिकी इजारेदार घरानों ने सरकार पर दबाव देकर मेक्सिको से मजदूरों के पारगमन पर कई तरह से नियंत्रण लागू कर दिया। इससे अमेरिकी मजदूरों की बेरोजगारी दूर तो नहीं हुई, लेकिन असंतोष कम करने की हदों तक सीमित जरूर हो गई। पूंजीपतियों को सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि अब वे मेक्सिकन मजदूरों का श्रम और अधिक सस्ती कीमतों पर खुद मेक्सिको में ही हासिल कर सकते थे। अब उन्होंने मेक्सिको सरकार के सामने पूर्वी एशिया की ही तरह 100 प्रतिशत तक मालिकाने और प्रबन्धन वाली अमेरिकी कम्पनियों के उद्यमों में मेक्सिकन मजदूरों का सस्ता श्रम खरीदने के लिए 'सीमावर्ती औद्योगीकरण

कार्यक्रम' का प्रस्ताव रखा, जिसके अन्तर्गत दोनों देशों की सीमा पर जुड़वां फैक्टरियों का निर्माण किया गया। इसी व्यवस्था को माकीलाडोरा व्यवस्था का नाम दिया गया। मेक्सिको में स्थित फैक्टरी में श्रम-प्रधान प्रक्रियाओं में मजदूर लगाये जाते थे। सीमा पार स्थित जुड़वां अमेरिकी फैक्टरी से कटे-कटाये कपड़े, इलेक्ट्रानिक पुर्जे, नकली फूल आदि तैयार करके आते थे जिन पर मेक्सिको स्थित माकीलाडोरा में सीने, चिपकाने, वेल्डिंग करने, पुर्जे जोड़ने आदि काम होते थे और तैयार माल को बाजारों तक पहुंचाने के लिए फिर अमेरिका भेज दिया जाता था।

मेक्सिको स्थित इन फैक्टरियों को असामान्य सरकारी रियायतें हासिल होती थीं। 100 प्रतिशत तक स्वामित्व व प्रबंधन पर पूर्ण नियंत्रण के अतिरिक्त इन्हें मुनाफा कर और बिक्री कर पर छूट, यहां तक कि कुछ मामलों में करों पर पूर्ण छूट, सरकारी हस्तक्षेप एवं श्रम सम्बन्धी कानूनों से छूट तथा अनुकूल शर्तों पर जमीन खरीदने या पट्टे पर लेने की सुविधा प्राप्त थी। सत्तर के दशक तक यह सीमावर्ती औद्योगीकरण कार्यक्रम साढ़े बारह मील के सीमान्त क्षेत्र के प्रारम्भिक दायरे से बढ़कर पूरे मेक्सिको तक फैल गया। यह एक नये किस्म का आर्थिक औपनिवेशीकरण था जो सरकार की सहमति-सहयोग से कायम था। फर्क सिर्फ इतना था कि साम्राज्यवादियों के लिए लूट का माल कच्चा माल न होकर सस्ता श्रम था। बहुत जल्दी ही बेरोजगारी दूर करने के घोषित उद्देश्य को तिलांजलि देकर अमेरिकी निगमों ने सस्ते श्रम के एक नए स्रोत के रूप में स्त्रियों पर ध्यान केन्द्रित किया और श्रम-शक्ति में बड़े पैमाने पर स्त्रियों की भरती शुरू की जैसा कि वे पूर्वी एशिया में पहले ही कर चुके थे। ये स्त्रियां ज्यादातर 16 से 25 वर्ष की, बेहद गरीब परिवारों की नवयुवतियां थीं जो छोटे कस्बों और शहरों से सीमावर्ती क्षेत्र में काम ढूंढने आई थीं। अपनी जगह-जमीन से उजड़े हुए हजारों गरीब परिवार उत्तरी सीमान्त क्षेत्र में इस उम्मीद में आ गये थे कि उनकी लड़कियों को काम मिल जायेगा। असेम्बली लाइन पर काम करने के लिए मेक्सिको में भी स्त्रियों को प्राथमिकता देने का मूल कारण वही था, जो एशिया और तीसरी दुनिया के तमाम देशों में। पितृसत्तात्मक समाज में दोयम दर्जे की स्थिति और पारिवारिक आय में महिलाओं के योगदान को पुरुषों की आय के सहायक के रूप में देखे जाने के कारण, न केवल पिछड़े देशों में बल्कि विकसित देशों में भी महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले काफी कम वेतन दिया जाता है। माकीलाडोरा के मजदूरों को पिछले दशक तक, सप्ताह में 48 घण्टे काम के लिए औसतन 455 पीसो प्रतिदिन न्यूनतम वेतन मिलता था जो 77 अमेरिकी सेण्ट प्रति घण्टा के बराबर था। अभी गत कुछ वर्षों में मेक्सिकन पीसो के भारी अवमूल्यन की वजह से इन कामगारों के वास्तविक वेतन में और अधिक कमी हो गई है।

1975 तक 500 जुड़वां (माकीलाडोरा) फैक्टरियों में लगभग 80,000 मजदूर काम कर रहे थे जिनमें 85 प्रतिशत स्त्रियां थीं। लगभग दस वर्षों बाद इन फैक्टरियों में काम करने वाली मजदूर औरतों की संख्या 1,35,000 हो चुकी थी और आज, एक अनुमान के अनुसार, यह पांच लाख की सीमा रेखा पार कर चुकी है। एक ओर जहां माकीलाडोरा कारखानों में 90 प्रतिशत स्त्रियां काम करती हैं, वहीं मेक्सिको के सीमावर्ती क्षेत्र में पुरुषों की बेरोजगारी 67 प्रतिशत से भी ऊपर जा पहुंची है।

माकीलाडोरा फैक्टरियों में काम करने वाली स्त्रियों का जीवन उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में ब्रिटेन के कपड़ा मिलों में काम करने वाली मजदूर औरतों के नारकीय जीवन से जरा भी बेहतर नहीं होता। इन्हें ट्रेड यूनियन बनाने का अधिकार नहीं है। न्यूनतम वेतन और सामाजिक सुरक्षा के जो भी संघीय श्रम कानून हैं, उनका अमेरिकी कम्पनियों के लिए जैसे कोई मायने ही नहीं है। सीमावर्ती माकीलाडोरा फैक्टरियों में 60 प्रतिशत इलेक्ट्रानिक प्लाण्ट हैं जिनमें काम करने वाली स्त्रियां खतरनाक रूप से जहरीले रसायनों का इस्तेमाल करती हैं पर उन्हें कोई भी स्वास्थ्य या सुरक्षा-सुविधा हासिल नहीं है। 36 प्रतिशत माकीलाडोरा फैक्टरियां कपड़े बनाने वाली है जिनमें काम करने वाली स्त्रियां असाध्य पीठ की बीमारियों, आंखों की बीमारियों और फेफड़ों की बीमारियों से ग्रस्त होती है। असेम्बली लाइन पर काम करने वाली महिलाएं दबाव और तनाव की वजह से पेट की बीमारियों, मासिक धर्म की अनियमितताओं और अनिद्रा की शिकार होती हैं। कामों के दबाव में वे आवश्यकतानुसार पानी पीने और पेशाब करने भी नहीं जा पातीं और उनके गुर्दे खराब हो जाते हैं।

इन नारकीय स्थितियों में जीने वाली इन स्त्री सर्वहाराओं को पारिवारिक तनावों और सामाजिक उत्पीड़न-लांछन का भी शिकार होना पड़ता है। भारत की अपेक्षा खुला समाज होने के बावजूद मैक्सिको के पुरुष भी स्त्रियों की मुख्य जगह रसोई घर और बेडरूम में मानते है और समझते है कि माकीलाडोरा व्यवस्था उनके पारिवारिक-सामाजिक जीवन के सूत्रों पर तनाव पैदा कर रही हैं। इसकी खीझ वे औरतों पर उतारते है। चूंकि ज्यादातर पुरुष बेकार हैं और स्त्रियां ही परिवार चलाती हैं, इसलिए पुरुष-स्वामित्ववादी मानसिकता की कुण्ठाओं का भी स्त्रियों को शिकार होना पड़ता है। पुरुषों की नाराजगी और विद्वेष के चलते माकीलाडोरा की मजदूर औरतों को तरह-तरह से लांछित-अपमानित किया जाता है और उन्हें अनैतिक, चरित्रहीन और परिवार बिगाड़ने वाले के रूप में प्रचारित किया जाता है। एक नृवंशशास्त्री पैट्रिशिया फर्नाण्डिज कैली के अनुसार उत्तरी मैक्सिको के छोटे-छोटे अखबार माकीलाडोरा की स्त्रियों के बारे में लैंगिक बीमारियों, अवैध सम्बन्धों, समलैंगिकता आदि की काल्पनिक रिपोर्टें छापते रहते हैं। फैक्टरी की नौकरी से जुड़ी बदनामी के कारण ये औरतें हरदम डरी और तनावग्रस्त रहती हैं तथा ज्यादा से ज्यादा दब्बू ढंग से पेश आती हैं जिसका मैनेजमेण्ट भरपूर फायदा उठाता है।

मैक्सिको के अखबार और सरकार जिस तरह पूंजी आमंत्रित करने की हांक लगाते हैं, उसे देखते हुए एनेट फ्यूण्टेस और बारबरा एहरेनराइश का यह कहना एकदम सटीक लगता है कि तीसरी दुनिया की सरकारों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बीच का रिश्ता भंडुवे और ग्राहक के बीच के रिश्ते जैसा होता है।

उदारीकरण की यही लहर हमारे देश में भी पंद्रह वर्षों पहले उभाड़ी गई और फण्ड-बैंक-गैट निर्देशित नये "टेन कमाण्डमेण्ट्स" को लागू करते हुए, नई आर्थिक नीति की "मुक्ति पताका" लहराते हुए गत पांच वर्षों से नरसिंह राव की और अब देवगौड़ा की सरकार श्रम को "मुक्त" करती जा रही है --- विदेशी निगमों और पूरी तरह उनके कनिष्ठ साझीदार बन चुके निजी क्षेत्र के पूंजीपतियों के लिए। स्वयं सरकार के ही विभिन्न स्रोतों से संकलित आंकड़े और अर्थशास्त्रियों-समाजशास्त्रियों के शोध-अध्ययन बताते हैं कि विगत डेढ़ दशक के भीतर हमारे देश में छोटे और अनौपचारिक क्षेत्र में आधुनिक उद्यमों का तीव्र गति से विकास हुआ है और स्त्रियों का अनुपात इस क्षेत्र में बढ़ता जा रहा है। ये तथ्य भी प्रायः सामने आते रहे हैं कि असंगठित-असुरक्षित कुशल मजदूरों में भी (अकुशल मजदूरों के साथ-साथ) औरतों की संख्या बढ़ती जा रही है। सरकार इलेक्ट्रॉनिक, ऑटोमोबाइल, खिलौने, सौन्दर्य-प्रसाधान, खाद्य-प्रसंस्करण आदि उद्योगों में विदेशी कम्पनियों को पूंजी लगाने के लिए जो छूटें दे रही है और श्रमिक अशांति से उन्हें बचाने की जो गारण्टी ले रही है, उसे देखते हुए, दावे के साथ कहा जा सकता है कि हमारे देश की मेहनतकशकश और निम्न-मध्यवर्गीय स्त्रियों की भारी आबादी बहुत जल्दी ही बहुराष्ट्रीय निगमों और उनके देशी साझीदारों के लिए सस्ते श्रम की स्वर्ण-खदान बनकर रह जायेगी -- पूर्वी एशिया और लातिन अमेरिकी देशों की तरह। आश्चर्य नहीं कि हमारे देश की सरकार भी थाइलैण्ड और मैक्सिको की सरकारों की तरह सस्ते नारी श्रम का लालच दिखा-दिखाकर विदेशी पूंजी को हांक लगा-लगाकर बुलाना शुरू कर दे!

मतलब यह कि भंडुवों ने काउण्टर तो खोल ही लिया है। ग्राहक भी आ रहे हैं। होड़ बढ़ेगी तो हांक लगाना तो शुरू ही कर देंगे। ●

साहित्य-चिन्तन

सौन्दर्यशास्त्र का मार्क्सवादी परिदृश्य

डा. रवि रंजन

मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र साहित्य और कला में अभिव्यक्त सौन्दर्यबोध के स्रोत तथा उनके स्वरूप के सामाजिक संदर्भों के मद्देनजर उन पर वस्तुपरक ढंग से प्रकाश डालता है। दूसरे शब्दों में कहें तो मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र का सारतत्व उसकी वस्तुपरकता तथा समाजवादी मानवता में निहित है। मार्क्स-एंगेल्स के लिए सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता का दृढ़ता के साथ प्रतिपादन इसलिए भी जरूरी हो गया था क्योंकि उनके पहले के तमाम भाववादी विचारक सौन्दर्य को हमेशा किसी अतीन्द्रिय लोक की सत्ता मानकर उसको सामाजिक उपलब्धि को नजरअंदाज कर देने की प्रवृत्ति से परिचालित थे। ऐसे, आज भी कला, साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में सक्रिय शुद्ध सौन्दर्यवादी विचारकों की कमी नहीं है जो सौन्दर्य की निरपेक्ष सत्ता में विश्वास रखते हैं। मुक्तिबोध ने ऐसे लोगों की धारणा का खंडन करते हुए लिखा है कि ''आदर्शवादी भाववादी सौन्दर्यशास्त्री सौन्दर्य को मनोवैज्ञानिक संवेदनाओं के ही रूप-रूपान्तरों को मूलभूत तथा चरम मानकर चलने वाले साधारण रूप से, उसको किसी अतीन्द्रिय सत्ता का आत्मप्रकाश भी मानते हैं। इन आदर्शवादी भाववादियों में अनेक पंथोपंथ हैं। वे मानव-इतिहास की भी उसी ढंग से व्याख्या करते हैं जिस प्रकार वे जगत् की आध्यात्मिक व्याख्या करते हैं। फलतः उनके लिए इतिहास, समाजशक्ति मनुष्य के परिवेश के रूप में उपस्थित होती है। वे उसे वह मूलभूत क्रिया नहीं मानते जो मनुष्य को उसकी प्रारम्भिक पार्श्व स्तर से उठाकर मानव स्तर तक तथा उससे भी आगे लगातार उसकी उन्नति करती हुई आ रही है, जिसने उसकी आत्मा को वास्तविकता दी है।'' इस सन्दर्भ में दो टूक निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए मुक्तिबोध लिखते हैं कि -- ''शुद्ध साहित्यिक सौन्दर्य, मात्र सौन्दर्य, निरपेक्ष सौन्दर्य को निरपेक्ष सत्ता स्वीकार करने वाले लोग या तो स्वयं धोखे में हैं, अथवा धोखा देना चाहते हैं।''

मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र मनुष्य के सौन्दर्यबोध को उसकी सामाजिक चेतना के ही अंग-अवयव के रूप में स्वीकार करता है। जाहिर है कि मार्क्स-एंगेल्स की रचनाएं अरस्तु के ''पोयटिक्स'' या क्रोचे के ''एस्थेटिक्स'' की तरह किसी सुव्यवस्थित ''सौन्दर्यशास्त्र'' का निर्माण नहीं करती। परवर्ती विचारकों ने अपने अकाट्य तर्कों से यह सिद्ध कर दिया है कि मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र मार्क्स-एंगेल्स के साहित्य विषयक निष्कर्षों की प्रतिध्वनि के बजाय उनके द्वारा प्रवर्तित द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर निर्मित है। ''एक कन्ट्रीब्यूशन टू द क्रिटिक ऑफ पोलिटिकल इकानोमी'' की प्रस्तावना में मार्क्स ने लिखा है कि ''अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य ऐसे निश्चित सम्बन्धों में बंधते हैं जो अपरिहार्य एवं उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते हैं। उत्पादन के ये सम्बन्ध, उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित मंजिल के अनुरूप होते हैं। इन उत्पादन सम्बन्धों का पूर्ण समाहार ही समाज का आर्थिक ढांचा है -- वह असली बुनियाद है जिस पर कानून और राजनीति का ऊपरी ढांचा खड़ा हो जाता है और जिसके अनुकूल ही सामाजिक चेतना के निश्चित रूप होते हैं। भौतिक जीवन की उत्पादन पद्धति जीवन की आम सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रिया को निर्धारित करती है। मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि उल्टे उसका सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना को निर्धारित करता है।'' मार्क्स के उपर्युक्त कथन को केन्द्र में रखकर ही लुकाच, काडवेल, ब्रेख्त, रोजर गारोदी, फिशर आदि चिंतकों ने सौन्दर्यशास्त्र की आधारभूत समस्याओं पर यथार्थवादी दृष्टि से विचार किया है। ये तमाम विचारक भाववादी विचारकों को कला-साहित्य के स्वायत्त एवं समाज निरपेक्ष अस्तित्व जैसी धारणा के विपरीत उसे श्रम की ऐतिहासिक प्रक्रिया के अन्तर्गत विकसित हुआ मानते हैं जिसके तहत कला-साहित्य और उसके मनोगत संघटकों का विकास होता रहा है। मार्क्स की धारणा रही है कि श्रम प्रक्रियाओं के अन्तर्गत ही मनुष्य में सौन्दर्यानुभूति के साथ-साथ ''संगीतधर्मा कान'' तथा -- ''रूपद्रष्टा आंख'' की चेतना जगी और इनका विकास हुआ। इसी प्रकार एंगेल्स ने भी ''वानर से नर'' बनने की प्रक्रिया में ''हाथ'' की भूमिका को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते हुए स्पष्ट किया है कि इसी की बदौलत ''रॉयफल की सी चित्रकारी, थोवल्दिसन की सी मूर्तिकारी तथा पागानीनी का -- सा संगीत आविर्भूत हो सका।'' एंगेल्स के इस वक्तव्य का विश्लेषण करते हुए डा. रमेश कुंतल मेघ ने अपनी पुस्तक -- ''साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक'' में लिखते हैं -- ''एंगेल्स ने सौन्दर्य-सृजन को सबसे पहली समाजशास्त्रीय शर्त उस युग से मानी जब वनमानुषों के चौपायेपन का विकास होकर उनसे मनुष्यों का आविर्भाव हुआ और -- 'जब हाथ स्वतंत्र हो गया।' हाथ केवल परिश्रम का उपकरण ही नहीं, श्रम का परिणाम भी हुआ। मानवीय हाथों ने ही उत्कर्ष की भव्य ऊंचाइयां प्राप्त कीं और सुन्दरतम सौन्दर्य सृजन किये, हाथों ने ही धनुष-बाण तथा स्पूतनिकों और अपोलो यानों का निर्माण किया, हाथों ने ही गोम्मटेश्वर की भीमकाय प्रतिमा गढ़ी, हाथों ने ही कांगड़ा के चित्र बनाये और हाथों ने ही ''राम की शक्तिपूजा'' लिखी। अतः हाथों में सौन्दर्य-सृजन की बाह्य प्रक्रिया, कौशल समेत प्रतीक बनी।''

मनुष्य एवं संसार के दूसरे प्राणियों के द्वारा किये जाने वाले उत्पादन की प्रक्रिया के बीच मूलभूत अन्तर को स्पष्ट करते हुए मार्क्स-एंगेल्स कहते हैं कि ''अन्य जीवधारी अपनी आवश्यकताओं एवं माप के अनुरूप ही उत्पादन करते हैं किन्तु मनुष्य अपने अतिरिक्त अन्य जीवजातियों के माप और आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन करना जानता है। मनुष्य सौन्दर्य नियमों के अनुसार ही सृजन करता है।'' इसके अलावा मनुष्य की उत्पादन प्रक्रिया की एक और विशेषता यह है कि वह सारा कुछ केवल उपयोगिता को ही ध्यान में रखकर नहीं करता बल्कि वह उपयोगिता से परे जाकर अपने संतोष, सुख एवं आनन्द के लिए भी काम करता है.

"...स्वभावतः ही आदमी के दिमाग में सबसे पहले यही विचार पैदा होता है कि कम्युनिज़्म का ज्ञान प्राप्त करने का अर्थ यह है कि कम्युनिस्ट गुटकों (manuals), पुस्तिकाओं तथा ग्रंथों में पाये जाने वाले समस्त ज्ञान को हृदंयगम कर लिया जाये। परन्तु कम्युनिज़्म को ग्रहण करने की यह परिभाषा अत्यंत भोंड़ी और अधूरी होगी। कम्युनिज़्म का अध्ययन करने का अर्थ यदि केवल यही होता कि जो कुछ कम्युनिस्ट पुस्तकों और पुस्तिकाओं में मौजूद है उसे हृदयंगम कर लिया जाये तो हम बहुत ही आसानी से कम्युनिस्ट पाठ्य-पुस्तकों के मदारियों अथवा शेखीबाज़ों की जमात खड़ी कर लेते और इससे अधिकांशतया हमें नुकसान ही पहुंचता --- क्योंकि कम्युनिस्ट पुस्तकों और पुस्तिकाओं में जो कुछ लिखा है उसे तोते की तरह रट लेने के बाद ऐसे लोग ज्ञान की विभिन्न शाखाओं का समन्वय करने में असमर्थ साबित होंगे और उस ढंग से कतई काम नहीं कर सकेंगे जिसकी कम्युनिज़्म वास्तव में उनसे अपेक्षा करता है।

पुराना, पूंजीवादी समाज अपनी विरासत में हमारे लिए जो एक सबसे बड़ी बुराई तथा दुर्भाग्यपूर्ण चीज़ दे गया है वह, वह पूर्ण अलगाव है जो पुस्तकों तथा व्यावहारिक जीवन के बीच पाया जाता है। ऐसी किताबों की हमारे पास कोई कमी नहीं है जिनमें, हर चीज़ को श्रेष्ठतम ढंग से समझाया गया है; किन्तु अधिकांशतया इन किताबों में अत्यंत घातक तथा पाखंडपूर्ण झूठ भरे हुए हैं; पूंजीवादी समाज का उनमें एक दम झूठा चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

इसीलिए, कम्युनिज़्म के बारे में केवल किताबी ज्ञान को कण्ठस्थ कर लेना बहुत बड़ी भूल होगी। हमारे भाषणों और लेखों में अब मात्र उन बातों को नहीं दोहराया जाता जो कम्युनिज़्म के बारे में पहले कही जाती थीं, क्योंकि हमारे भाषणों और लेखों का सम्बन्ध अब समस्त क्षेत्रों में किये जाने वाले हमारे रोज़मर्रा के काम के साथ जुड़ गया है। कोई काम न किया जाय और कोई संघर्ष न किया जाय तो कम्युनिस्ट पुस्तिकाओं तथा ग्रंथों से प्राप्त किया गया कम्युनिज़्म का किताबी ज्ञान एकदम बेकार होगा, क्योंकि उससे सिद्धांत और व्यवहार के बीच का वह पुराना अलगाव, वह पुरानी खाई बनी ही रहेगी जो पुराने पूंजीवादी समाज की सर्वाधिक सत्यानाशी विशेषता थी।

इससे भी अधिक खतरनाक यह होगा कि केवल कम्युनिस्ट नारों को रट लिया जाय।"

– ब्ला. इ. लेनिन

(युवक संघों के कार्य, 2 अक्टूबर 1920, सम्पूर्ण ग्रंथावली, खण्ड 31, पृ. 283-99)

और कई बार, ''स्वांतः सुखाय'' किया गया उसका कार्य ''बहुजन हिताय'' भी सिद्ध होता है। उपयोगिता से परे जाकर कार्य करने की मनुष्य की प्रवृत्ति के मूल में सौन्दर्यतत्व की प्रेरणा को स्वीकारते हुए मार्क्स उसे मानवजाति का ऐसा क्रियाकलाप मानते हैं जिसे मनुष्य सामाजिक-ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत आत्मोपलब्धि की दिशा में सदा प्रगति के रूप में सम्पन्न करता है।

मार्क्स के सौन्दर्य तत्व विषयक उपर्युक्त मंतव्य को और अधिक स्पष्ट रूप में समझने के लिए यहां मुक्तिबोध को उद्धृत करना अप्रासंगिक नहीं होगा जिन्होंने हिन्दी में कदाचित पहली बार मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के संदर्भ में सूत्रवाक्य प्रस्तुत करते हुए ''एक साहित्यिक की डायरी'' में लिखा था कि ''कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक फैन्टेसी का रूप धारण कर लेना। मानो वह फैन्टेसी अपनी आंखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैन्टेसी के शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता।'' कहना न होगा कि रचना-प्रक्रिया को लेकर भाववादी रचनाकारों/विचारकों द्वारा साहित्य चिन्तन के क्षेत्र में उहापोह पैदा करने वाले जो भारी-भरकम वक्तव्य दिये जाते हैं उनकी रहस्मयता को तोड़ने में मुक्तिबोध का यह वक्तव्य कितना कारगर रहा है। इसी प्रकार सौन्दर्यानुभूति के संदर्भ में भी उनकी धारणा भाववादी विचारकों के मुकाबले ज्यादा साफ और मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण है। सौन्दर्यानुभूति को वास्तविक जीवन की मनुष्यता बताते हुए मुक्तिबोध लिखते हैं... ''अपने से परे उठने और परे जाने की यह जो प्रवृत्ति है, उसी की एक विशेष शाखा है सौन्दर्यानुभूति। यह सौन्दर्यानुभूति केवल कलाकार की विशेषता नहीं है, वरन् वह उन सबकी विशेषता है जिन्हें हम मनुष्य कहते हैं। वह मनुष्यत्व का एक लक्षण है। ... घर में दिन भर मेहनत करने वाली मां और पत्नी, मारा-मारा फिरने वाला नवयुवक, अपने मां-बाप का बोझ हल्का करने के लिए नौकरी ढूंढ़ने वाली बेटी -- इनको मानव जीवन का यह रस प्राप्त होता रहता है। इसीलिए वे जीते हैं, अपने लिए और दूसरों के लिए। सौन्दर्यानुभूति केवल कलाकार की निधि नहीं है। वह वास्तविक जीवन में, वास्तविक भावना और कल्पना का उच्चतर स्तर पर ऐसा एकाएक उत्स्फूर्त और विकसित विस्तार है, जिसमें मनुष्य की व्यक्तिसत्ता का विलोपन हो जाता है। किन्तु आत्मबद्ध दशा का यह परिहार वास्तविक जीवन में, वास्तविक जीवन ही का अंग है, जिसकी सहायता के बिना वास्तविक जीवन अधिक सुखकर तथा सुगम नहीं होगा, जिसके बिना यथार्थ मानव सम्बन्ध अधिक स्निग्ध और सार्थक नहीं होंगे, जिसके बिना हम दूसरों में घुलमिल सकने के आनन्द को सघन नहीं करेंगे। संक्षेप में, सौन्दर्यानुभूति की अधिकतमता और बारम्बारता जिस व्यक्ति में अधिक होगी वह अधिक मनुष्य होगा। ... अपने से परे उठने और परे जाने की मनुष्य क्षमता से उसका पूरा और सीधा सम्बन्ध है।'' अपनी एक कविता में जब मुक्तिबोध कहते हैं कि –

समस्या एक
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों के
सभी मानव
सुखी, सुन्दर व शोषणमुक्त
कब होंगे।

– तो स्पष्ट ही यह एक ऐसे मानवतावादी कवि की चिंता है जो आत्मबद्ध दशा का परिहार कर मनुष्य-मात्र को ऐसी स्थिति में देखना चाहता है जिसमें कि उसे मानवोचित जीवन जीने की तमाम अनिवार्य शर्तें उपलब्ध हों। रचनाकार का यह स्वप्न, उसकी यह उदात्त अनुभूति और कुछ नहीं, सौन्दर्यानुभूति ही है। सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता को स्वीकारते हुए मुक्तिबोध ने ''मानसिक द्रवण के क्षण'' को ''सौन्दर्यानुभूति का क्षण'' माना है। उनके अनुसार सौन्दर्यानुभूति के दो लक्षण है -- आत्मबद्ध दशा का परिहार तथा आनन्दात्मक अनुभव।

जब नयी कविता के बुर्ज से एक जमाने में कला-संस्कृति के क्षेत्र में शोषक वर्ग की सौन्दर्याभिरुचि के पोषक रचनाकारों द्वारा जनपक्षधर रचनाओं को सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से विद्रूप करार दिया जाने लगा तो इसका प्रतिवाद करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा था --''ये सौन्दर्यवादी लोग भूल गये कि बंजर काले स्याह पहाड़ में भी एक अजीब वीरान भव्यता होती है, गली के अंधेरे में उगे छोटे से जंगली पौधे में भी एक विचित्र संकेत होता है। विशाल व्यापक मानव-जीवन में पाये जाने वाले भयानक संघर्ष के रौद्र रूप तो उनकी सौन्दर्याभिरुचि के फ्रेम से बाहर थे। आप मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह कहूं कि नयी कविता में आवेश के पंख काट दिये गये, कल्पना को अपने पिंजरे में पालकर रखा गया। उसे मानव-जीवन को मूर्त और साक्षात् करने वाली रचनात्मक शक्ति के रूप में उपस्थित नहीं किया गया, क्योंकि वह एक विशेष प्रकार की भद्रजनोचित सौन्दर्याभिरुचि के फ्रेम के खिलाफ जाती थी।'' कहना न होगा कि वह ''भद्रजनोचित सौन्दर्याभिरुचि'' और कुछ नहीं सांस्कृतिक क्षेत्र में किसी युग विशेष में ऐतिहासिक तथा आर्थिक-राजनीतिक कारणों से वर्चस्व प्राप्त कर लेने वाले अभिजनों की वर्गाभिरुचि ही है जो संस्कृतिकर्मियों को अपने विभिन्न हथकंडों द्वारा अनुकूलित करने की निरन्तर चेष्टा करते रहते हैं। जो कवि-लेखक सत्ता-व्यवस्था के द्वारा प्रदान किये जाने वाले विभिन्न पुरस्कारों एवं सुविधाओं के प्रलोभन से अपने को बचाकर अनुकूलन से जूझते हैं उन्हें अनेकानेक विपन्न परिस्थितियां झेलनी पड़ती हैं और जो रचनाकार इस सत्तानुकूलन का शिकार हो जाते हैं उनकी सौन्दर्याभिरुचि प्रायः जड़ीभूत हो जाने को अभिशप्त होती है। अपनी कविताओं में ऐसे समझौतापरस्त शब्दकर्मियों की बखिया उधेरते हुए मुक्तिबोध लिखते हैं –

1.
राजनीति, साहित्य और कला के प्रतिष्ठित महासूर्य
बड़े–बड़े मसीहा
सरकस के जोकर से रिझाते हैं निरन्तर
नाचते हैं कूदते हैं
शोषण में सिद्धहस्त स्वामियों के सामने।

2.
दुनिया को हाट समझ
जन–जन के जीवन का मांस काट
रक्त–मांस विक्रय के
प्रदर्शन की प्रतिभा का
नया ठाठ,
शब्दों का अर्थ जब
नोच–खसोट लूट–पाट।
(मुक्तिबोध रचनावली, भाग 2, पृ. 44)

कला, साहित्य, संस्कृति ही नहीं, मानव-सक्रियता के किसी भी क्षेत्र से जुड़ा मनुष्य जब व्यवस्थानुकूलन के इस शैतानी ढांचे में फिट होने से इंकार कर देता है तो भले ही यह कुछ लोगों के लिए सिनिकपन हो किन्तु उसका यह इंकार वस्तुतः व्यवस्था द्वारा निर्धारित एवं स्वीकृत तमाम मूल्यों एवं मानदण्डों के सामने एक बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न खड़ा करता है। ये मूल्य-मानदण्ड समाजार्थिक और राजनैतिक ही नहीं, सांस्कृतिक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय भी होते हैं जिन्हें प्रतिबद्ध कवि बेहिचक नकार देता है –

नामंजूर उसको
जिन्दगी को शर्म की सी शर्त नामंजूर।
(मुक्तिबोध रचनावली, भाग 2, पृ. 391)

अदोल्फो सांचेज वास्क्वेस ने ''सौन्दर्य बोध के स्रोत और स्वरूप के बारे में मार्क्स के विचार'' का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि

राहुल फाउण्डेशन द्वारा शीघ्र प्रकाश्य

श्रम और पूंजी के बीच छिड़े वैचारिक युद्ध में एक शक्तिशाली हथियार

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त

❐

'शंघाई पोलिटिकल इकानमी' नाम से प्रसिद्ध यह पुस्तक सबसे पहले चीन में 1975 में प्रकाशित हुई थी। यह माओवादी समाजवादी आर्थिक सिद्धान्त की सर्वाधिक समग्र और प्रामाणिक प्रस्तुतियों में से एक है। मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति है।

समाजवादी नियोजित अर्थव्यवस्था पूंजीवाद के शोषण, असमानता और धनलिप्सा के खात्मे की दिशा में कैसे काम कर रही थी इसे यह पुस्तक बेहद जीवंतता से दिखाती है। सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान माओवादी शक्तियों द्वारा लिखित और चीन के वर्तमान शासकों द्वारा प्रतिबन्धित यह बेजोड़ कृति 1949 से 1976 के दौरान माओ त्से-तुङ के नेतृत्व में चीन के अनुभवों का परीक्षण करती है जब विश्व की एक-चौथाई आबादी ने एक विशाल अर्थव्यवस्था को, समाज को और खुद को बदल डाला।

एक नियोजित अर्थव्यवस्था की प्रकृति, उद्देश्यों और व्यावहारिकता के सम्बन्ध में जारी बहस में यह एक बहुमूल्य योगदान है। प्रसिद्ध अमरीकी लेखक और अध्येता **नेविल मैक्सवेल** के शब्दों में,

''सोवियत संघ में राजकीय पूंजीवाद के पतन से स्तब्ध इस युग में, चीन में क्रान्तिकारी दौर में अर्जित समाजवाद की सफलताओं की याद दिलाया जाना उत्साहवर्द्धक है; और यह कृति जीवंत और विश्वसनीय ढंग से उस सिद्धान्त को प्रस्तुत करती है, जिसे व्यवहार ने सफलतापूर्वक सही सिद्ध किया था। यह न केवल इस पर रोशनी डालती है कि उलटी राह पर चल पड़ने के पहले चीन ने कैसे विकास किया, बल्कि भविष्य को समझने में भी उपयोगी हो सकती है।''

❐

एक नई दुनिया का सपना देखने वाले और उसके लिए संघर्षरत हर व्यक्ति के लिए एक ज़रूरी किताब

दो भागों में. शीघ्र प्रकाश्य

प्राप्ति के लिए लिखें अथवा सम्पर्क करें :

राहुल फाउण्डेशन 3\274, विश्वासखण्ड, गोमती नगर, लखनऊ - 226010, फोन : 393896

जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर - 273001, फोन :338922

''सौन्दर्यशास्त्र को मार्क्स का महान योगदान मनुष्य और यथार्थ के बीच एक विशिष्ट सम्बन्ध के रूप में सौन्दर्यबोध के बारे में उनकी वह धारणा है जिसके अनुसार सौन्दर्यबोध प्रकृति का रूपातंरण करने और मानवीय वस्तुओं का जगत निर्मित करने की प्रक्रिया में ऐतिहासिक और सामाजिक रूप से विकसित हुआ है।'' अपने इसी निबंध में आगे वे मनुष्य की सौन्दर्य संवेदना तथा सौन्दर्यपरक सम्बन्ध के सामाजिक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उसे उपयोगितावाद से पृथक बताते हैं -- ''सौन्दर्य-संवेदना तभी प्रकट होती है जब मानवीय संवेदना इस हद तक समृद्ध हो चुकी होती है कि वस्तुएं प्रमुखतः और सारतः मानवीय यथार्थ, 'सारभूत मानवीय शक्तियों का यथार्थ बन जाती है।' वस्तुओं के गुणों को सौन्दर्यपरक गुणों के रूप में तभी देखा जाता है जब उन्हें प्रत्यक्ष उपयोगितावादी अर्थ में नहीं समझा जाता, जब वे खुद मनुष्य की अभिव्यक्ति और उसका सार हो जाते हैं। खास तौर पर कला-रचना और आमतौर से वस्तुओं के साथ बनने वाले सौन्दर्यपरक सम्बन्ध मानवता के समूचे इतिहास के फल हैं और इसके साथ ही ये दोनों उन सर्वाधिक विकसित साधनों में हैं जिनसे मनुष्य वस्तु जगत में अपने को स्थापित करता है।'' किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि मार्क्सवादी विचारक साहित्य, कला आदि को अनुपयोगी मानते हैं। 1844 की 'इकानामिक एंड फिलासोफिकल मेनुस्क्रिप्ट्स' में मार्क्स ने साफ लिखा है कि श्रम के किसी ऐसे उत्पाद की कल्पना भी नहीं की जा सकती जो भौतिक अर्थ में अनुपयोगी हो। भाववादी तथा यांत्रिक भौतिकवादी सौन्दर्यशास्त्र से भिन्न मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र श्रम के उच्चतर रूप में कला साहित्य आदि को मनुष्य की सौन्दर्य बोधात्मक क्रिया की अभिव्यक्ति के रूप में मान्यता देता है जिसकी मानवीय और सार्वभौम उपयोगिता होती है। दूसरे शब्दों में यदि कहें तो मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार साहित्य एवं कला-सृजन मनुष्य द्वारा सम्पन्न एक ऐसा सांस्कृतिक क्रिया-व्यापार है जो कुदाल को कलम से ओछा मानने की बजाय मनुष्य द्वारा किये जाने वाले हर प्रकार श्रम में सौन्दर्य की सत्ता देखता है। काव्य-क्षेत्र में उपलब्ध इस बात के अनेकानेक प्रमाणों में एक मुक्तिबोध की नीचे उद्धृत काव्य पंक्तियां हैं जिनमें शारीरिक श्रम एवं शब्दकर्म के बीच द्विभाजकता को साफ तौर पर नकारा गया है --

विचार आते हैं —
लिखते समय नहीं,
बोझ ढोते वक्त पीठ पर
सिर पर उठाते समय भार
परिश्रम करते समय
चांद उगता है व
पानी में झलमलाने लगता है
हृदय के पानी में।।

इस संदर्भ में अन्ततः जार्ज लुकाच को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा जिन्होंने समाजवादी मानवता को मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र का सार बताया है -- ''समाजवादी मानवता ही प्रगतिवादी सौन्दर्यशास्त्र एवं वस्तुवादी ऐतिहासिक चेतना का सार है। यह वस्तुवादी चेतना सामग्रिक भाव से मूलाधार का संधान करती है किन्तु पुष्प के अह्लादकारी सौन्दर्य की उपेक्षा नहीं करती, बल्कि ठीक इसके विपरीत इतिहास की वस्तुवादी चेतना एवं प्रगतिवादी सौन्दर्यशास्त्र इस मूलाधार एवं फल के सजीव सम्पर्क को अविच्छेद मानने के पक्ष को मजबूत बनाता है।'' एक अन्य स्थान पर लुकाच ने साफ लिखा है कि ''मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र उस प्रश्न का हल ढूंढ़ लेता है, जिससे महान लोग एक अरसे से उलझते रहे हैं। (और जो प्रश्न छोटे लोगों की समझ में इसलिए नहीं आता था कि वे लोग छोटे थे)। यह प्रश्न है, किसी कलाकृति के स्थायी सौन्दर्यमूल्य को उस ऐतिहासिक प्रक्रिया का अंग बनाना जिससे वह कृति अपनी पूर्णता और सौन्दर्यमूल्य में ही वस्तुतः अविभाज्य होती है।... चूंकि महान कलाकार गतिहीन वस्तुओं और स्थितियों को नहीं प्रस्तुत करता, बल्कि प्रक्रिया की दिशा और रूझान को व्यक्त करने की कोशिश करता है, इसलिए उसे इस प्रक्रिया के स्वरूप की अच्छी समझ होनी चाहिए और इस प्रकार की समझ बिना पक्षधरता के नहीं आ सकती।''

महाविद्रोही-महापंडित
राहुल सांस्कृत्यायन
के
जन्मदिवस (9 अप्रैल) एवं
पुण्यतिथि (14 अप्रैल)
के अवसर पर...

''यदि जन बल पर विश्वास है तो हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। जनता की दुर्दम शक्ति ने फासिज्म की काली घटाओं में, आशा के विद्युत का संचार किया है। वही अमोघ शक्ति हमारे भविष्य की भी गारण्टी है...''
- राहुल सांकृत्यायन

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि ''मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र'' कला का विरोधी नहीं कलावाद का विरोधी है। वह ''शैलीवाद'' का विरोधी तो है किन्तु शैली के किसी प्रकार-विशेष से उसका विरोध नहीं है। इसी तरह ''प्रकृतवाद'' से विरोध होने के बावजूद वह किसी प्रकृत-सत्य का विरोधी नहीं है। वह कला-साहित्य आदि के क्षेत्र रूपवादी रूझान का जितना विरोधी है, सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता में विश्वास रखने के बावजूद ''वस्तुवाद'' से भी उतना ही अलग है। सौन्दर्य को लेकर वह किसी भी प्रकार के अमूर्तन या अंतीन्द्रीयता की धारणा को स्वीकार भले न करता हो पर कला-साहित्य के लिए सौन्दर्य तत्व को अपरिहार्य मानता है। निराला के एक काव्यांश से विचारसूत्र लेकर यदि कहें तो वैज्ञानिक यथार्थवादी लेखक की रचना-दृष्टि में 'चारु चयन' (Asthetic selection) की वही अनिवार्य भूमिका है जो हरे पत्ते में जल की, पुष्प में सुरभि की, फल में बीज की तथा उपवन में पक्षियों के कलरव को होती है --

''पल्लव में जल, सुरभि सुमन में
फल में दल, कलरव उपवन में
लाओ चारु चयन चितवन में''।
--निराला

किन्तु, इस संदर्भ में यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि आज के बदलते माहौल में हम ''चारुता'' की पुरानी परिभाषा से चिपक कर नहीं रह सकते। यदि हम इस कड़वे सत्य से मुंह चुरायेंगे तो हमारी ''चारुता'' कभी ''प्रियषुसौभाग्यफला'' नहीं हो सकती। दूसरे शब्दों में कहें तो हम उस जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि के शिकार हो जायेंगे जिससे मुक्ति का आवाहन करते हुए सन् 1936 में ही प्रेमचंद ने कहा था -- हमें हुस्न का मेयार तब्दील करना होगा क्योंकि ''अभी तक उसका मेयार अमीराना, ऐशपरवाना था।'' उन्होंने ''जीवन संग्राम में सौन्दर्य का

(शेष पृष्ठ 58 पर)

बिल गेट्स की यात्रा का महत्व और निहितार्थ

''सूचना क्रांति'' का सच — भूमण्डलीकरण के दौर में अमेरिकी साम्राज्यवाद की नई बाज़ार-रणनीति

भूपेश कुमार सिंह

बिल गेट्स महोदय भारत की यात्रा पर आये। इस मौके पर भारतीय संचार माध्यमों ने खूब ढोल बजाये और कसीदे काढ़े। भारतीय प्रेस इस पूरे यात्रा काल में बिल गेट के जीवन से जुड़े तथ्यों, किवदंतियों से लेकर सरासर झूठी अफवाहों तक का पुलिंदा परोसता रहा। आखिर यह सब हो हल्ला क्यों?

विलियम हेनरी गेट-तृतीय उर्फ **बिल गेट्स** मात्र व्यक्तित्व नहीं हैं। वे अमेरिकी साम्राज्यवाद के सांस्कृतिक राजदूत हैं। बिल गेट अमेरिकी निगम संस्कृति के मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। वे गुणवत्ता, सत्ता एवं पूंजी के गंठजोड़ से दुनियावी समृद्धि की लूट के प्रतीक पुरुष हैं। बुर्जुआ संचार-तंत्र बिल-गेट्स को कम्प्यूटर-आधारित ''उत्पादकता क्रांति'' का उन्नायक तथा अभिनव प्रौद्योगिकी का स्रष्टा बना कर प्रस्तुत करता है। अतः हम इस अवसर पर बिल गेट्स के जीवन की उपलब्धियों को एक अन्य क्रांतिकारी कम्प्यूटर-वैज्ञानिक व उद्यमी सिमूर के जीवन से तुलना करते हुए उसकी सफलता के कारणों की पड़ताल करेंगे।

बिल गेट्स, कहा जाता है कि, 13 वर्ष की उम्र से कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग करने लगे थे। थोड़े ही समय में वे एक 'हैकर' के तौर पर उस जमाने के DEC तथा CDC कम्प्यूटर को फेल करने में सक्षम हो गये। 1973 से 1975 तक बिल गेट्स हार्वर्ड विश्वविद्यालय के छात्र रहे। किन्तु अनिच्छा की वजह से अपना पाठ्यक्रम अधूरा छोड़ कर अपने मित्र पाल एलेन के साथ एक कम्पनी की नींव डाली जो आज की विश्व विख्यात 'माईक्रोसाफ्ट' है। बिल गेट्स बाजार की नस तथा दौर विशेष में लोगों की जरूरतों को चमत्कारी ढंग से पहचानते हैं। अपने हार्वर्ड के दिनों में ही उन्होंने 'बेसिक' का विकास किया। 'बेसिक' पहली प्रोग्रामिंग की भाषा थी जो सभी कम्प्यूटर सीखने वालों द्वारा खूब पसन्द की गई। 1980 में बिल गेट्स ने MS-DOS 'आपरेटिंग सिस्टम' लिखा तथा IBM ने इसे अपने सभी पीसी के लिए मानक मान लिया। अपनी प्रखर व्यावसायिक बुद्धि का प्रयोग कर उन्होंने इसे बेचने के बजाय लाइसेन्स पर दिया। तात्पर्य यह कि अब हर IBM-PC की बिक्री पर माइक्रोसाफ्ट को 100 डालर रायल्टी के मिलते तथा Ibm इस आपरेटिंग सिस्टम को उपभोक्ता को मुफ्त दिखावटी तौर पर देता। दरअसल उपभोक्ता से

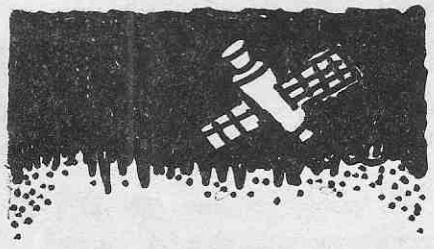

MS-DOS की कीमत कम्प्यूटर के दाम में ही वसूल ली जाती। अब IBM के विश्वव्यापी विपणन तंत्र एवं आर्थिक धौंस के दम पर MS-DOS अपनी उपादेयता से भी कहीं ज्यादा लोकप्रिय हो गया तथा उद्योग मानक बन गया।

विन्डोज (Windos) का विचार बिल गेट्स ने स्टेव जॉब के मैक सिस्टम से झटक लिया तथा अपने आर्थिक संसाधन एवं प्रचार तंत्र के बल पर ऐसा माहौल बनाया कि सिंगापुर में तो विंडोज के खरीदारों की कतारें लग गई। इसी तरह हालांकि बिल गेट्स के Explorer के बाजार में आने के काफी पहले ही नेट स्केप पूरे नेटवर्क पर छा चुका था किन्तु आज भी आश्चर्यजनक ढंग से बिल गेट्स ही इन्टरनेट के पुरोधा माने जा रहे हैं।

सुपर कम्प्यूटर के जनक **सिमूर क्रे** का पूरा जीवन अभिनव एवं उत्कृष्ट उपलब्धियों से भरा रहा था। **सिमूर क्रे** ने अपने व्यावसायिक जीवन की शुरुआत सैनिक के रूप में की। कुछ समय तक वे भाड़े के सिपाही भी रहे, किन्तु 1950 में उन्होंने विद्युत अभियंत्रण में स्नातक तथा गणित में स्नातकोत्तर उपाधि हासिल कर ली। कुछ समय तक वान नूमेन (Von Numen) के साथ कार्यरत रहने के बाद वे 1950 में कम्प्यूटर इंजीनियर बन गये। 1957 में उन्होंने एक सहसंस्थापक के तौर पर कन्ट्रोल डाटा कारपोरेशन (CDC) की नींव डाली; जहां उन्होंने पहला सालिड स्टेट (Transister Based) कम्प्यूटर CDC 1604 बनाया। क्रे के इस कदम से कम्प्यूटर का आकार अपने पूर्व के कम्प्यूटर्स से छोटा होकर सुविधाजनक हो गया। 1963 में CDC 6600 बाजार में आ गया। क्रे के इस कम्प्यूटर ने IBM 7094 को प्रतियोगिता में न केवल चुनौती दी वरन् पछाड़ भी दिया। यानी सिमूर क्रे मात्र 34 लोगों की टीम के बूते IBM जैसी दैत्याकार संस्था को सार्थक चुनौती देने में

सफल रहे थे। तदनन्तर क्रे ने CDC छोड़ कर अपनी कम्पनी 'क्रे रिसर्च' की स्थापना 1972 में की। 1976 में ही क्रे-1 बाजार में आ चुका था। 1985 में क्रे-2 बाजार में आ गया। क्रे-2 अपनी संगणन क्षमता में क्रे-1 से लगभग दस गुना अधिक था। IBM मेनफ्रेम कम्प्यूटर की एक दिन की समूची उत्पादकता के बराबर कार्य क्रे-2 एक घंटे में निपटा सकता था। क्रे ने सुपर कम्प्यूटिंग की परिभाषा बदल दी। उसके अनुसार सुपर कम्प्यूटर -- ''वैज्ञानिकों की कल्पनाओं से मात्र एक पीढ़ी पीछे का कम्प्यूटर;'' था जिसे उसने बाजार में लाकर दिखा दिया।

क्रे के 'सुपर कम्प्यूटर' किसी भी खरीदार के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए। वे मौसम की अचूक भविष्यवाणी के लिए गणना करने से लेकर नाभिकीय मिसाइल के नोंक की अभिकल्पना तक -- हर जगह इस्तेमाल हुए। क्रे मशीनें नाभिकीय विस्फोटों का सिमुलेशन (simulation) कर बिना किसी ध्वंस के ऐसे संवेदनशील प्रयोग को सम्भव बनाती थी।

अब एक नजर हम पीसी की उपादेयता तथा उत्पादकता पर भी डालें। वाल स्ट्रीट जरनल (इण्डियन एक्सप्रेस, 2 मार्च, 1997) के अनुसार पीसी अनुत्पादक ही सिद्ध हुए हैं। एक अनुसंधान संस्था NPD Group Inc ने 10076 परसनल कम्प्यूटरों में अपना अनुश्रवक साफ्टवेयर pc meter एक महीने चलाकर जो नतीजे निकाले वह चौंकाने वाले हैं। अपनी संचालन अवधि के 54 प्रतिशत समय ये कम्प्यूटर बेकार रहते हैं। बेकारी (switech on) का पैमाना एक मिनट या उससे अधिक अवधि तक अप्रयुक्त रहने को माना गया। 46 प्रतिशत प्रयुक्त समय का उपभोग भी कुछ इस प्रकार किया गया : संगणन काल का 29 प्रतिशत समय आपरेटिंग सिस्टम से छेड़छाड़ में बीतता है। 16 प्रतिशत समय में 'वर्ड प्रोसेसिंग' तथा अन्य साफ्टवेयर चलते हैं। 15 प्रतिशत समय गेम खेलने में जाया होता है। इन्टरनेट के लिए समय वरीयता चौथे स्थान पर आती है। प्रयुक्त समय का 12 प्रतिशत संचार तंत्र की डायलिंग में लगता है, जबकि महीने में मात्र साढ़े तीन घंटे ही वास्तविक सूचना का आदान प्रदान हो पाता है।

बिल गेट्स तथा सिमूर क्रे के उत्पादों की उपादेयता तो लगभग स्पष्ट हो चुकी है। चूंकि कोई भी देश सिमूर क्रे की मशीनें खरीद कर उससे सधने वाले कार्यों के दम पर अमेरिकी सैनिक सर्वोच्चता को चुनौती दे सकता था, अतः अमेरिकी प्रशासन क्रे कम्प्यूटर के निर्यात पर नाना प्रकार की शर्तें थोप कर उसे असम्भव नहीं तो कम से कम दुरुह अवश्य बना देता था। इन मशीनों के निर्यात पर अवरोध इसलिए लगाये गये क्योंकि इनकी खरीदार के लिए उपादेयता थी। दूसरी तरफ शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद क्रे मशीनों के सबसे बड़े खरीददार पेंटागन ने भी खरीदारी बंद कर दी। यही वजह थी कि सिमूर क्रे अपनी मौत से ठीक पहले के छह साल में एक भी मशीन नहीं बेच पाया। जब वह मरा तो एक दिवालिया था।

स्पष्ट है कि अपनी मशीनों के जरिए शक्ति एवं क्षमता का संभावित निर्यातक सिमूर क्रे एक ओर जहां पूंजीवादी बाजार तंत्र में दिवालिया मरने के लिए अभिशप्त है, वहीं दूसरी ओर, तरीका-झटक, निठल्लेपन का निर्यातक बिल गेट्स केवल सही जुगलबंदी तथा प्रतिष्ठान की अनुकूलता के दर्शन -- पूंजी प्रतिभा तथा धौंस के दम पर समृद्धि केन्द्रीकरण का पुरोधा और दुनिया का सबसे सम्पन्न व्यक्ति है। उसके पास 13 खरब डालर की कम्पनी **माइक्रोसाफ्ट** के 282,000,000 शेयर हैं। उसकी सम्पत्ति रोज 5 करोड़ डालर की दर से बढ़ रही है। अतः अमेरिका को प्रतिभा पूजकों का देश समझने वालों की आंखे खुल जानी चाहिए। यह तुलना इतना बोध तो करा ही देती है कि बिल गेट्स अपनी नैसर्गिक प्रतिभा के लिए पुरस्कृत नहीं हुए हैं वरन् अमेरिकी कारपोरेट गैंग में शामिल होने के एवज में पुरस्कृत हुए हैं।

अफसोस यह है कि उदारीकरण (उधारीकरण) के इस दौर में पूंजी पूजन की प्रवृत्ति अपने चरम पर है। अन्यथा बिल गेट्स की यात्रा को इस ढंग से मसीहाई अंदाज में प्रस्तुत किया जाना, प्रधानमंत्री का एक व्यापारी से मुलाकात के लिए दौड़े जाना यहां तक कि संचार माध्यमों द्वारा उसी दौर में फिलीपींस के रामोस की यात्रा की उपेक्षा आदि यही साबित करती है कि 'कारपोरेट' के प्रचारतंत्र ने भारतीय मेधा को अपने जाल में जकड़ लिया है। अन्यथा अगर वे दीवाल पर लिखी इबारत नहीं भी पढ़ पा रहे हैं तो कम से कम बिल गेट्स का लिखा तो पढ़ते ही।

बिल गेट्स ने अपनी किताब 'The Road Ahed* के एक अध्याय का नाम ही 'Friction Free Capitalism' रखा है। इस अध्याय में विशद रूप से चर्चा की गई है कि कैसे इन्टरनेट के प्रसार के साथ बाजार तंत्र पूर्णता ग्रहण कर लेगा। उस समय बाजार का विज्ञापन तंत्र इतना व्यापक होगा कि व्यक्ति के निजी क्षणों पर कब्जा कर उसे श्रमिक अथवा उपभोक्ता बनाया जा सकेगा। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय निगम पूरे विश्व में अपनी धाक जमा लेंगे। TCI Inc (USA) के चेयरमैन जान मैलोन के अनुसार, ''विश्व संचार के क्षेत्र में दो या तीन कम्पनियां ही रह जायेंगी। बड़े बुलबुले बड़े होते जायेंगे तथा छोटे बुलबुले लुप्त होते जायेंगे।'' सन 2000 तक इन्टरनेट सबसे विस्तृत, गहन, तीव्रतम तथा सबसे सुरक्षित बाजार होगा जहां लगभग एक ट्रिलियन डालर का लेनदेन होगा।

बिल गेट्स की भारत यात्रा का उद्देश्य अमेरिका में सूचना क्षेत्र प्रोफेशनलस् की कमी को पूरा करना है। वहां 190,000 ऐसे पद रिक्त पड़े हैं। हो सकता है कि उन्हें यहीं से नेट-संबद्ध दफ्तरों में काम पर रख लिया जाये। यह यात्रा ठीक वैसी ही है जैसे शहरों से गांव आने वाले अपने घर के झाड़ू-पोछा के लिए मिट्ठू, रामू आदि को ढूंढ़ने निकलते हैं।

एक सामर्थ्यदायी प्रक्रिया (क्रे कम्प्यूटर) का मुंह के बल गिरना बिल गेट्स का समृद्धि के शिखर पर चढ़ जाना, तथा उसकी अगवानी में भारतीय बौद्धिकों एवं राजनैतिक सत्ता का खुद को कालीन की तरह प्रस्तुत करना कई सवाल खड़े करती है। इसमें सबसे अहम सवाल यह है कि आखिर विज्ञान का लक्ष्य क्या है? बहुत सारे वैज्ञानिक एवं चिन्तक **जीन डोर्स्ट** जैसा ही सोचते हैं कि ''यह सर्वथा उचित है कि हम स्वयं से पूछें कि इस तकनीकी सभ्यता का क्या मूल्य है? हममें से हर कोई जब-तब यह महसूस करता है कि हम एक ऐसी तेज भागती ट्रेन पर सवार हैं जिस पर से उतरना असम्भव है। हम नहीं जानते कि यह हमको कहां लिये जा रही है। शायद 'दूध' और 'मधु' के देश की ओर, या मृत्यु की ओर यानी दूसरे शब्दों में, महाविनाश के कगार पर? मनुष्य ने ऐसे जादूगर का खेल खेला है और ऐसी प्रक्रियाओं को शुरू किया है जिनको वह स्वयं काबू में नहीं रख सकता।'' किन्तु ऐसा सामाजिक सरोकार रखने वाला वैज्ञानिक भी इस भ्रम का शिकार है कि विज्ञान व तकनोलॉजी सामाजिक संदर्भों में तटस्थ है तथा उनके लाभ समाज के सभी वर्गों को समान रूप से प्रभावित करते हैं। जबकि सच्चाई यह है कि किसी अन्य ज्ञान की तरह विज्ञान भी सामाजिक श्रम के एक विशिष्ट ऐतिहासिक रूप -- मानसिक श्रम का उत्पाद है, जो समाज के वर्ग-विभाजन के फलस्वरूप पैदा हुआ तथा उसी में पुष्पित-पल्लवित हुआ है। अतः प्रारम्भ से ही विज्ञान के विकास की दिशा सत्ताधारी वर्गों के हितों के अनुकूल रही है। बिल गेट्स की यात्रा भी मुनाफे की खोज की यात्रा रही है। वह भारत में सस्ते मजदूर एवं बेहतर बाजार की खोज में आया था। किन्तु इस यात्रा के सांस्कृतिक नतीजे बहुआयामी व दूरगामी है।

('आह्वान कैम्पस टाइम्स' से साभार)

अवतार सिंह 'पाश' की शहादत (23 मार्च) की स्मृति में

- अमरजीत कौंके

तुम्हारे जिस्म को
छलनी कर
उन्हें भ्रम था --
कि
तुम्हारे शब्द भी
खामोश हो गये.....
लेकिन
वे नहीं जानते
कि कवि के मरने से
कविता नहीं मरती.....
कविता तो जीती है
सांसों से सांसों तक
आदमी से आदमी तक
पीढ़ियों से पीढ़ियों तक --
हवाओं के रथ पर
सवार होकर....
तुम्हारे जिस्म को
छलनी कर
उन्हें भ्रम है....
कि
पाश मर गया है.....
लेकिन
पाश तो जिन्दा है
खेतों के किनारे
घास नुचते
चिड़ियों के चम्बे में
उगी कपास में
गांवों की चौपालों में
अपने शब्दों में
पाश अभी जिन्दा है....
पाश की कविता जिन्दा है
पाश हमारे दिलों में जीता है.....
खेत --
अपने पुत्रों को
कभी मरने नहीं देते।

('द्वंद्व-कथा' संकलन से)

तर्कहीन युद्ध

(पाश के नाम)

- स्वर्णजीत सवी

चिड़ियों का चम्बा कहीं नहीं गया
यहीं है -- पाश!
और न ही कहीं गई है
आदमखोरों की टोली
तुम्हारे जाने के बाद
चुप्पी में गुस्त
ख़ौफज़दा चेहरे भी यहीं हैं
उदास व लटकते चेहरे
जो सिर्फ चुप हैं
उदास हैं --
ख़ौफज़दा हैं
ये तुम्हारी तरह
धार पर नहीं चल सकते
इनके चेहरों के धुएं से धुंधलाए अक्स
इनकी हीनता की कहानी सुनाते हैं
पाश!
तुमने बता दिया है
कि ये सब नामर्द हैं --
बिल्कुल हिजड़े

हां! तुम शायद नहीं जानते
कि जो यह चुप्पी
यहां
पूरी भयावहता में हाजिर है
यह चुप्पी नहीं है --
तार-तार हुई चेतना है
यह खामोशी नहीं है --
चिथड़े-चिथड़े हुई खुदी है
यह चुप्पी नहीं है --
दो धारी तलवार की साज़िश है
यह खामोशी नहीं है --
मुकम्मिल त्रासदी है --
हमारे समयों की
जो हर दरवाज़े को
भीतर से चिटखनी लगाये बैठी है
तुम्हें मिट्टी से बड़ी ममता हो गई थी
मिट्टी को --
अपनी बांहें
अपना जिस्म --
अपना सब कुछ मानते थे
कभी सोचा था तुमने पाश --
कभी सोचा था --?
कि जिन बांहों को
तुम जोर से आलिंगन में बांधते थे
जिन बांहों को
तुम अपनी मानते थे
कभी सोचा था
कि वे सब
गोली बन कर
तुम्हारी छाती में धंस जायेंगी
कभी सोचा था?
वैसे मरना तुम्हारे लिए
कोई आठवां अजूबा तो न था
लेकिन मिट्टी ऐसे सिला चुकायेगी
तुम्हारी सोच का ऐसे मातम मनायेगी --
कभी सोचा था?
कभी सोचा था
कि जिन उपायों-पगडण्डियों
धान-गेहूं के बोहलों में
तुम्हारी कविता सांस लेती थी
वे सब तुम्हारी कविता की सांसें
अजगर बन कर पी जायेंगी
कभी सोचा था?
सोचा था कभी
कि इस तर्कहीन युद्ध में
तुम महज़ प्यादे की तरह
पटक दिये जाओगे।।

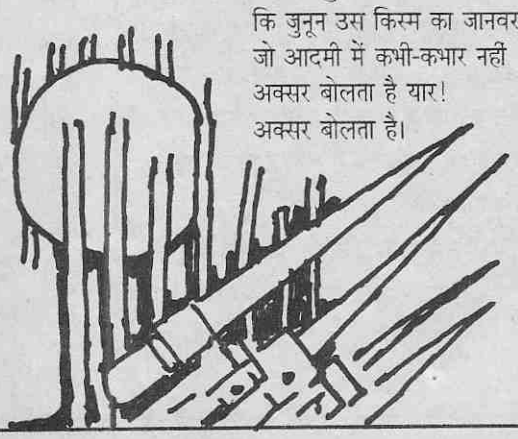

वैसे! दोस्त!
भावुक होने में आखिर क्या भलाई है
जब भीतर की आवाज़
भीतर और बाहर
घटने के स्तर पर एक होते हुए भी
गले से बाहर आते ही
पूरे अहम को कुचल कर
समझौतावादी बन जाये
तब बताओ
मातम के अर्थ क्या रह जाते हैं
और भावुकता का क्या स्तर
रह जाता है...
पाश! तुम
स्वस्थ राजनीति के सपने लेते-लेते
यह भूल गये थे
कि स्टेट की दोनों 'टी' में से
एक 'टी' का अर्थ होता है --
अन्धा टैररिज्म
जो -- न आंख की भाषा समझता है
न जुबान की
न लहराती चुनरियों की
न धूल में पगी हड़ियों की
जो -- न तुतलाती मासूमियत को समझती है
न दीवार पर खुदी आशीषों की
जो न देश लौटे हुओं की परदेसी प्रतीक्षा को जानती है
न ही परदेसिनों के लाल चूड़ों को
वह तो बस --
छाती या पीठ में घोंपे जाना जानती है
पाश -- आज यह सहम
उस दूसरी व भयावह 'टी' का है
जो स्टेट की सौतन भी है
और अर्द्धांगिनी भी.....
और आज...
हां पाश आज
स्टेट-प्यादों-हाथियों व
घोड़ों की शतरंज के
तर्कहीन युद्ध ने प्रमाणित कर ही दिया है
कि जुनून उस किस्म का जानवर है
जो आदमी में कभी-कभार नहीं
अक्सर बोलता है यार!
अक्सर बोलता है।

अनुवाद - चमन लाल

पेरिस कम्यून की 126वीं वर्षगांठ के अवसर पर

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (1966-76) के तीसरे दशाब्दी वर्ष के अवसर पर 'दायित्वबोध' में नवम्बर '96 - फरवरी '97 अंक से हमने इस युगान्तरकारी सामाजिक प्रयोग के कुछ महत्वपूर्ण दस्तावेजों और लेखों की श्रृंखला का प्रकाशन शुरू किया। इस श्रृंखला की दूसरी कड़ी में इस बार हम महान पेरिस कम्यून (18 मार्च 1871) की 126 वर्षगांठ के अवसर पर वीर कम्यूनार्डों को श्रद्धांजलि देते हुए पेरिस कम्यून विषयक एक महत्वपूर्ण लेख और एक ऐतिहासिक दस्तावेज प्रकाशित कर रहे हैं। आज यह अध्ययन महत्वपूर्ण, आवश्यक और दिलचस्प होगा कि विश्व सर्वहारा क्रान्ति के अग्रतम मुकाम पर खड़े होकर -- यानी चीन की सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के पहले प्रयोग -- पेरिस कम्यून की ऐतिहासिक महत्ता और शिक्षाओं का आकलन-मूल्यांकन किस प्रकार किया जा रहा था और उसके अनुभवों के समाहार को सांस्कृतिक क्रान्ति के चुनौतीपूर्ण कार्यभार -- सर्वहारा वर्ग के सर्वतोमुखी अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति को जारी रखने के साथ और पूंजीवादी पुनर्स्थापना की कोशिशों के विरुद्ध संघर्ष के साथ किस प्रकार जोड़ा जा रहा था।

समाजवाद की समस्याओं और पूंजीवादी पुनर्स्थापना के कारणों को समझने के लिए तथा अतीत की क्रान्तियों की शिक्षाओं को आत्मसात करके भावी क्रान्तियों की सैद्धान्तिक पूर्वपीठिका तैयार करने की दृष्टि से प्रस्तुत सामग्री का विशेष महत्व है।

चेङ चिह-स्त्जू का लेख 'पेरिस कम्यून की महान शिक्षाएं' सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के पहले वर्ष (1966) के दौरान पेरिस कम्यून की 95वीं वर्षगांठ के अवसर पर पीकिङ रिव्यू, सं. 16 (15 अप्रैल, 1966) में प्रकाशित हुआ था। दूसरा ऐतिहासिक दस्तावेज 'सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय अमर रहे' पेरिस कम्यून की शतवार्षिक जयन्ती के अवसर पर 'रन मिन रपाओ', 'हुङछी' और 'च्येफाङच्युन पाओ' पार्टी-पत्रों के सम्पादकीय विभागों द्वारा 18 मार्च 1971 को लिखा गया और विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, पीकिङ द्वारा उसी वर्ष हिन्दी में प्रकाशित किया गया।

'दायित्वबोध' के आगामी अंकों में हम इसी श्रृंखला के अन्तर्गत सांस्कृतिक क्रान्ति के कुछ और महत्वपूर्ण दस्तावेज प्रकाशित करेंगे।

- सम्पादक

पेरिस कम्यून की महान शिक्षायें

चेङ चिह स्त्जू

सत्ता हासिल करने के बाद सर्वहारा वर्ग को हर संभव कोशिश करनी चाहिए कि उसके राज्य के उपकरण समाज के सेवक से समाज के स्वामी के रूप में न बदल जायें। सर्वहारा राज्य के विभिन्न अंगों-उपांगों में काम करने वाले सभी कार्यकर्ताओं के लिए ऊंची तनख्वाहें पाने और एकाधिक पदों पर एक साथ काम करते हुए एकाधिक तनख्वाहें पाने की व्यवस्था समाप्त कर दी जानी चाहिए, और इन कार्यकर्ताओं को किसी विशेष सुविधा का लाभ नहीं उठाना चाहिए।

सर्वहारा अधिनायकत्व के राज्य-उपकरणों के अधःपतन को कैसे रोका जाये? इस मामले में पेरिस कम्यून ने कई एक अन्वेषणात्मक कदम उठाये और कई एक ऐसी कार्रवाइयां कीं, जो हालांकि अंतरिम (या आजमाइशी) थीं, लेकिन जिनका गंभीर और दूरगामी महत्व था। इन कार्रवाइयों में हमारे सोचने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सूत्र उद्घाटित होते हैं।

एंगेल्स के अनुसार,

राज्य और राज्य के उपकरणों के, समाज के सेवक से समाज के स्वामी की स्थिति में इस रूपान्तरण के खिलाफ -- जो सभी पूर्ववर्ती राज्यों में अपरिहार्यतः घटित हुआ है -- कम्यून ने दो अचूक साधनों का इस्तेमाल किया। पहला यह कि, इसने प्रशासकीय, न्यायिक और शैक्षिक -- सभी पदों पर सभी संबंधित लोगों के सार्विक मताधिकार के आधार पर चुनाव के द्वारा नियुक्तियां कीं और इस शर्त के साथ कि कभी भी उन्हीं निर्वाचकों द्वारा (चुने गये व्यक्ति को) वापस भी बुलाया जा सकता था। और दूसरा यह कि, ऊंचे और निचले दर्जे के सभी पदाधिकारियों को वही वेतन मिलता था जो अन्य मजदूरों को। कम्यून द्वारा किसी को दी जाने वाली सबसे ऊंची तनख्वाह 6,000 फ्रैंक थी। इसतरह, प्रतिनिधि संस्थाओं के प्रतिनिधियों पर लगाये गये बाध्यताकारी अधिदेशों के अतिरिक्त, (उपरोक्त दो निर्णयों के द्वारा) पदलोलुपता और कैरियरवाद के रास्ते में एक प्रभावी अवरोधक लगाया गया।

पेरिस कम्यून में जन समुदाय वास्तविक स्वामी था। कम्यून जबतक अस्तित्व में था, जन समुदाय व्यापक पैमाने पर संगठित था और सभी अहम राजकीय मामलों पर लोग अपने-अपने संगठनों में विचार-विमर्श करते थे। प्रतिदिन क्लब-मीटिंगों में लगभग 20,000 ऐक्टिविस्ट हिस्सा लेते थे जहां वे विभिन्न छोटे-बड़े सामाजिक और राजनीतिक मसलों पर अपने प्रस्ताव या आलोचनात्मक विचार रखते थे। वे क्रान्तिकारी समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में लेख और पत्र लिखकर भी अपनी आकांक्षाओं और मांगों को अभिव्यक्त करते थे। जनसमुदाय का यह क्रांतिकारी उत्साह और यह पहलकदमी कम्यून की शक्ति का स्रोत थी।

कम्यून के सदस्य जनसमुदाय के विचारों पर विशेष ध्यान देते थे, इसके लिए लोगों की विभिन्न बैठकों में हिस्सा लेते थे और उनके पत्रों का अध्ययन करते थे। कम्यून की कार्यकारिणी समिति के महासचिव ने कम्यून के सेक्रेटरी को पत्र लिखते हुए कहा था:, "हमें प्रतिदिन, जुबानी और लिखित -- दोनों ही रूपों में बहुत सारे प्रस्ताव प्राप्त होते हैं जिनमें से कुछ, व्यक्तियों द्वारा और कुछ क्लबों और इण्टरनेशनल की शाखाओं द्वारा भेजे गये होते हैं। ये प्रस्ताव प्रायः उत्तम कोटि के होते हैं और कम्यून द्वारा इनपर विचार किया जाना चाहिए।" वास्तव में, कम्यून जनसमुदाय के प्रस्तावों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन करता था और उन्हें स्वीकार करता था। कम्यून की बहुत-सी महान आज्ञप्तियां जन-समुदाय के प्रस्तावों पर आधारित थीं, जैसे कि राज्य के पदाधिकारियों के लिए ऊंची तनख्वाहों की व्यवस्था समाप्त करना, लगान के बकायों को मंसूख करना, धर्म-निरपेक्ष शिक्षा-व्यवस्था लागू करना, नानबाइयों के लिए रात की पाली में काम करने की व्यवस्था समाप्त करना, वगैरह-वगैरह।

जन-समुदाय कम्यून और इसके सदस्यों के कार्यों की सावधानीपूर्वक जांच-पड़ताल भी करता था। तृतीय प्रांत के कम्युनल क्लब का एक प्रस्ताव कहता है : "जनता ही स्वामी है... यदि जिन लोगों को तुमने चुना है वे ढुलमुलपन का या अनियंत्रित होने का संकेत देते हैं, तो उन्हें आगे की ओर धक्के दो ताकि हमारा लक्ष्य सिद्ध हो सके -- यानी हमारे अधिकारों के लिए जारी संघर्ष अपना लक्ष्य प्राप्त कर सके, गणराज्य का सुदृढ़ीकरण हो सके, ताकि न्यायसंगति का लक्ष्य विजयी हो सके।" प्रतिक्रांतिकारियों, भगोड़ों और गद्दारों के खिलाफ दृढ़ कदम न उठाने के लिए, स्वयं द्वारा (कम्यून द्वारा) पारित आज्ञप्तियों को तत्काल लागू नहीं करने के लिए और इसके (कम्यून के) सदस्यों के बीच एकता के अभाव के लिए जनसमुदाय ने कम्यून की आलोचना की। उदाहरण के तौर पर, *Le Pere Duchene* के 27 अप्रैल के अंक में प्रकाशित एक पाठक का पत्र कहता है : "कृपया समय-समय पर कम्यून के सदस्यों को धक्के लगाते रहें, उनसे कहें कि वे सो न जाया करें, और अपनी स्वयं की आज्ञप्तियों को लागू करने में टालमटोल न करें। उन्हें अपने आपसी झगड़ों को समाप्त कर लेना चाहिए क्योंकि सिर्फ विचारों की एकता के जरिए ही वे, अधिक शक्ति के साथ, कम्यून की हिफाजत कर सकते हैं।"

उन जन-प्रतिनिधियों को, जिन्होंने जनता के हितों के साथ विश्वासघात किया हो, बदल देने और वापस बुला लेने के प्राविधान खोखले शब्द-मात्र नहीं थे। कम्यून ने, वस्तुतः ब्लांशे (Blanchet) को कम्यून की सदस्यता से वंचित कर दिया था क्योंकि वह पादरी, व्यापारी और खुफिया एजेण्ट रहा था। वह पेरिस पर कब्जा के दौरान 'नेशनल गार्ड' की कतारों में छलपूर्वक घुस गया था और जालसाजी करके फर्जी नाम से कम्यून का सदस्य बन गया था। कम्यून ने इस तथ्य के मद्देनजर क्लूसेरे (Cluseret) को सैनिक

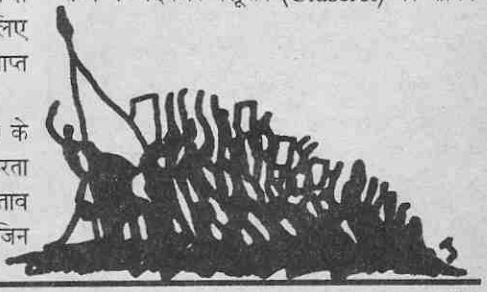

प्रतिनिधि के ओहदे से वंचित कर दिया कि 'सैनिक प्रतिनिधि की असावधानी और लापरवाही से इस्सी दुर्ग लगभग खो दिया गया था।" इसके पहले, लुल्लियेर (Lullier) को भी पदच्यूत किया जा चुका था और 'नेशनल गार्ड' की केन्द्रीय कमेटी द्वारा गिरफ्तार किया जा चुका था।

पेरिस कम्यून ने राज्य के पदाधिकारियों के विशेषाधिकारों को समाप्त करने में भी दृढ़ता का परिचय दिया और, तनख्वाहों के मामले में इसने ऐतिहासिक अर्थवत्ता से युक्त एक महत्वपूर्ण सुधार किया।

हम जानते हैं कि शोषक वर्गों के अधीनस्थ राज्य अपने अधिकारियों को निरपवाद रूप से उत्तम कोटि की जीवन-स्थितियां और बहुतेरे विशेषाधिकार प्रदान करते हैं ताकि उन्हें जनता को कुचल डालने वाला अधिपति बना दिया जाये। अपने ऊंचे ओहदों पर बैठे हुए, मोटी तनख्वाहें उठाते हुए और लोगों पर धौंस जमाते हुए – यही है शोषक वर्गों के अधिकारियों की तस्वीर। दूसरे फ्रांसीसी साम्राज्य के काल को लें। उस दौरान अधिकारियों की सालाना तनख्वाहें इस प्रकार थीं : नेशनल असेम्बली के प्रतिनिधि के लिए 30,000 फ्रैंक; मंत्री के लिए 50,000 फ्रैंक; प्रिवी कौंसिल के सदस्य के लिए एक लाख फ्रैंक; स्टेट के कौंसिलर के लिए 1 लाख 30 हजार फ्रैंक। यदि कोई व्यक्ति कई आधिकारिक पदों पर एक साथ काम करता था तो वह इकट्ठे कई तनख्वाहें उठाता था। उदाहरण के लिए, नेपोलियन तृतीय का प्रिय पात्र राउहेर (Rouher) एक ही साथ नेशनल असेम्बली का प्रतिनिधि, प्रिवी कौंसिल का सदस्य और स्टेट का कौंसिलर – तीनों था। उसकी कुल सालाना तनख्वाह 2 लाख 60 हजार फ्रैंक थी। पेरिस के एक कुशल मजदूर को इतनी रकम कमाने के लिए 150 वर्षों तक काम करना पड़ता। जहां तक खुद नेपोलियन तृतीय की बात थी, राज्य के खजाने से उसे सालाना 2 करोड़ 50 लाख फ्रैंक दिये जाते थे। अन्य राजकीय आर्थिक सहायताओं को मिलाकर उसकी कुल सालाना आमदनी तीन करोड़ फ्रैंक थी।

फ्रांसीसी सर्वहारा इस स्थिति से घृणा करता था। पेरिस कम्यून की स्थापना के पहले भी, उसने कई मौकों पर यह मांग की थी कि अधिकारियों की ऊंची तनख्वाहों की व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाये। कम्यून की स्थापना के साथ ही, मेहनतकश अवाम की यह चिरकालिक आकांक्षा पूरी हो गई। 1 अप्रैल को यह प्रसिद्ध आज्ञप्ति जारी हुई कि किसी भी पदाधिकारी को दी जाने वाली सबसे ऊंची सालाना तनख्वाह 6,000 फ्रैंक से अधिक नहीं होनी चाहिए। आज्ञप्ति के अनुसार : पहले, ''सार्वजनिक संस्थाओं के ऊंचे ओहदे, ऊंची तनख्वाहों के कारण, प्रलोभन की चीज़ माने जाते थे और संरक्षण के रूप में उन्हें किसी को दिया जाता था।'' लेकिन ''एक सच्चे जनवादी गणराज्य में दायित्वमुक्त, आराम की नौकरियों या ऊंची तनख्वाहों के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता।'' 6000 फ्रैंक की रकम उस समय के एक कुशल फ्रांसीसी मज़दूर की सालाना मजदूरी की कुल रकम के बराबर थी। प्रसिद्ध वैज्ञानिक हक्सले के अनुसार, यह रकम लंदन मेट्रोपोलिटन स्कूल बोर्ड के एक सेक्रेटरी की तनख्वाह के पांचवे हिस्से से भी कुछ कम थी।

पेरिस कम्यून ने अपने पदाधिकारियों द्वारा एक साथ कई तनख्वाहें उठाने पर भी रोक लगा दी, और 19 मई के निर्णय के अनुसार :

इस बात का ध्यान रखते हुए कि कम्यून की व्यवस्था के अंतर्गत, हर आधिकारिक पद के लिए निर्धारित पारिश्रमिक की राशि हर उस व्यक्ति के लिए सुचारु रूप से और सम्मानपूर्वक जीवन-यापन लायक होनी चाहिए जो अपने दायित्वों को पूरा करता है... कम्यून यह प्रस्ताव पारित करता है : एक से अधिक पद पर काम करने के एवज में किसी तरह का अतिरिक्त पारिश्रमिक दिया जाना निषिद्ध है, कम्यून के जिन पदाधिकारियों को उनके सामान्य काम के अतिरिक्त कोई दूसरा जिम्मेदारी का काम सौंपा जायेगा, उन्हें कोई नया पारिश्रमिक पाने का अधिकार नहीं होगा।

ऊंची तनख्वाहों और एक से अधिक पदों के लिए तनख्वाहों को समाप्त करने के साथ ही कम्यून ने कमतर तनख्वाहों को बढ़ाने का भी काम किया ताकि वेतनमान में अंतर को कम किया जा सके। उदाहरण के तौर पर डाकखाने को लें : कम तनख्वाह वाले कर्मचारियों की पगार 800 फ्रैंक सालाना से बढ़ाकर 1200 फ्रैंक कर दी गयी जबकि 12,000 फ्रैंक सालाना की ऊंची तनख्वाहों को आधा घटाकर 6,000 फ्रैंक कर दिया गया। कम तनख्वाह वाले कर्मचारियों की आजीविका सुनिश्चित करने के लिए कम्यून ने त्वरित प्रावधान के द्वारा सभी आर्थिक कटौतियों और अर्थदण्डों पर भी रोक लगा दी।

विशेषाधिकारों, ऊंची तनख्वाहों और एक साथ कई पदों के लिए कई तनख्वाहों की समाप्ति से संबंधित विनियमों के क्रियान्वयन में कम्यून के सदस्यों ने स्वयं मॉडल का काम किया। कम्यून के एक सदस्य थीस्ज (Theisz) को, जो डाकखाने का प्रभारी था, विनियमों के अनुसार 500 फ्रैंक माहवार की तनख्वाह मिल सकती थी, पर वह सिर्फ 450 फ्रैंक लेने पर ही राजी हुआ। कम्यून के जनरल व्रोब्लेवस्की (Wroblewski) ने स्वेच्छा से अधिकारी श्रेणी का अपना वेतन छोड़ दिया और एलिसी महल में दिये गये अपार्टमेण्ट में रहने से इंकार कर दिया। उसने घोषणा की : ''एक जनरल की जगह उसके सैनिकों के बीच होती है।''

पेरिस कम्यून की कार्यकारिणी समिति ने जनरल की पदवी को समाप्त करने के लिए भी एक प्रस्ताव पारित किया। 6 अप्रैल के अपने प्रस्ताव में समिति ने कहा : ''इस तथ्य के मद्देनजर कि जनरल की पदवी नेशनल गार्ड के जनवादी संगठन के उसूलों के असंगत है... यह निर्णय लिया जाता है : जनरल की पदवी समाप्त की जाती है।'' अफसोस की बात है कि यह निर्णय व्यवहार में लागू नहीं हो सका।

राज्य के नेता जो वेतन लेते थे वह एक कुशल मज़दूर के वेतन के बराबर होता था। अधिक काम करना उनका अनिवार्य कर्तव्य था, पर उन्हें अधिक वेतन लेने का या किसी भी तरह की विशेष सुविधा का कोई अधिकार नहीं था। यह एक अभूतपूर्व चीज थी। इसने 'सस्ते सरकार' के नारे को सच्चे अर्थों में यथार्थ में रूपांतरित कर दिया। इसने तथाकथित राजकीय मामलों के संचालन के इर्दगिर्द निर्मित ''रहस्य''

जो सही अर्थों में युवा है,
जिनके दिलों में अपने लोगों के लिए प्यार है
और ज़ोर-ज़ुल्म के खिलाफ़ बगावत की आग
जो सपने देख सकते हैं और लड़ सकते हैं,
जो कहते हैं 'शहीदे आज़म भगतसिंह का रास्ता हमारा रास्ता'

जनता के उन बहादुर सपूतों का अपना अखबार

आह्वान कैम्पस टाइम्स

छह वर्षों से प्रकाशित हो रहा क्रान्तिकारी नौजवानों का पाक्षिक अखबार

सम्पादक : मुकुल श्रीवास्तव
सम्पादकीय कार्यालय : **'संस्कृति कुटीर'**, कल्याणपुर, गोरखपुर -273001
एक प्रति :- 3 रुपये वार्षिक : 72 रुपये आजीवन : 1000 रुपये

और ''विशिष्टता'' के उस वातावरण को समाप्त कर दिया -- जो शोषक वर्ग द्वारा जनता को मूर्ख बनाने के एक साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। इसने राजकीय मामलों के संचालन को सीधे-सीधे एक मजदूर के कर्तव्यों में बदल दिया और (राज्य के) पदाधिकारियों को 'विशेष औजारों' से काम लेने वाले मजदूरों में रूपान्तरित कर दिया। पर इसकी महान अर्थवत्ता सिर्फ इसी बात में निहित नहीं है। भौतिक पुरस्कारों या लाभों के मामले में, इसने पदाधिकारियों के अधःपतन को रोकने वाली स्थितियों का निर्माण किया। लेनिन के अनुसार, ''यह कदम, और साथ ही पदाधिकारियों के चुनाव और सभी सार्वजनिक अधिकारियों के हटा दिये जाने का सिद्धान्त तथा उन्हें ''मालिक वर्ग'' के मानकों या बुर्जुआ मानकों के बजाय सर्वहारा मानकों के अनुसार वेतन-भुगतान -- यह मजदूर वर्ग का आदर्श है।'' वे आगे कहते हैं:

सभी प्रतिनिधित्व भत्तों की, और अधिकारियों के सभी वित्तीय विशेषाधिकारों की समाप्ति, राज्य के सभी सेवकों का पारिश्रमिक 'मजदूरों की तनख्वाह' के स्तर तक घटा देना। यह बुर्जुआ जनवाद के सर्वहारा जनवाद में, उत्पीड़कों के जनवाद के उत्पीड़ित वर्गों के जनवाद में रूपांतरण को, राज्य के एक वर्ग-विशेष द्वारा दमन के 'विशेष बल' से, -- उत्पीड़कों का दमन करने वाले, जनता की बहुसंख्या के -- मजदूरों और किसानों के 'सामान्य बल' में रूपान्तरण को, अन्य किसी चीज के मुकाबले अधिक स्पष्टता से प्रदर्शित करता है। और यही वह विशिष्ट ध्यानाकर्षक बिन्दु है, राज्य की समस्या से जुड़ा हुआ शायद वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु है, जिस पर मार्क्स के विचारों की पूरी तरह अनदेखी की गई है... जो किया गया है वह यह कि इसके बारे में चुप्पी साध ली गई है मानो यह पुराने ढंग के 'भेल्तेपन' का एक हिस्सा हो।

और ठीक यही वह चीज है जो ख्रुश्चेवी संशोधनवादियों का नेतृत्वकारी गुट कर रहा है : उन्होंने पेरिस कम्यून के इस महत्वपूर्ण अनुभव की पूरी तरह उपेक्षा की है। वे विशेषाधिकारों के पीछे भागते हैं, अपने विशेषाधिकार-प्राप्त ओहदों का इस्तेमाल करते हैं, सार्वजनिक गतिविधियों को निजी लाभ के मौकों में बदल देते हैं, जनता की मेहनत के फल हड़प जाते हैं और साधारण मजदूरों और किसानों की तनख्वाहों से दसियों गुना और कभी-कभी तो सैकड़ों गुना अधिक कमाई करते हैं। राजनीतिक अवस्थिति से लेकर जीवन-प्रणाली तक में, वे मेहनतकश अवाम से मुंह मोड़ चुके हैं और बुर्जुआ वर्ग और नौकरशाह पूंजीपति जो कुछ करते हैं, उसी की नकल करने लगे हैं। अपने शासन का सामाजिक आधार मजबूत करने की कोशिश में, मोटी आमदनी और विशेषाधिकारों वाला एक सामाजिक संस्तर तैयार करने में, वे ऊंची तनख्वाहों, ऊंचे पुरस्कारों, ऊंची फीसों एवं वजीफों का और धन कमाने के अन्य तरह-तरह के तरीकों का भी इस्तेमाल करते हैं। जनता की क्रांतिकारी संकल्प शक्ति को पैसे से क्षरित करने की कोशिश में, वे ''भौतिक प्रोत्साहनों'' के बारे में बेतहाशा बातें करते हैं, रूबल को ''शक्तिशाली संचालक शक्ति'' बताते हैं और कहते हैं कि उन्हें 'लोगों को शिक्षित करने के लिए रूबलों का इस्तेमाल करना' चाहिए। ख्रुश्चेवी संशोधनवादियों की इन हरकतों की तुलना पेरिस कम्यून के ''भोलेपन'' से (जैसाकि वे कहते हैं) करने पर कोई भी व्यक्ति आसानी से देख सकता है कि जनता के सेवक और जनता के स्वामी होने का क्या मतलब होता है; राज्य के अवयवों को समाज के सेवक से समाज के स्वामी में रूपांतरित कर दिये जाने का क्या अर्थ है। एंगेल्स लिखते हैं, ''क्या तुम जानना चाहते हो कि यह अधिनायकत्व कैसा होता है? पेरिस कम्यून को देखो। यह सर्वहारा का अधिनायकत्व था।'' इसी प्रकार हम कह सकते हैं : क्या तुम जानना चाहते हो कि सर्वहारा का अधःपतित अधिनायकत्व कैसा होता है? तो ख्रुश्चेवी संशोधनवादी गुट के शासन के अन्तर्गत सोवियत संघ के ''समूची जनता के राज्य'' को देखो।

सर्वहारा वर्ग को दुश्मन की नकली शांति वार्ताओं के प्रति सर्तक रहना चाहिए जबकि वह वास्तव मे युद्ध की तैयारी कर रहा होता है, और प्रतिक्रांतिकारी दोहरे रणकौशल से निपटने के लिए क्रांतिकारी दोहरे रणकौशल का इस्तेमाल करना चाहिए।

पेरिस कम्यून ने वसीयत के तौर पर हमारे लिए कई महान और प्रेरणादायी शिक्षाएं छोड़ी हैं। इनमें से बहुतेरी सकारात्मक रूप से मूल्यवान हैं; और कुछ अन्य कड़वे अनुभवों की शिक्षाएं हैं।

कम्यून के नेतृत्व में ब्लांकीवादी और प्रूधोंवादी शामिल थे। इनमें से कोई भी सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी नहीं थी। इनमें से किसी ने भी मार्क्सवाद को समझा नहीं था और किसी के पास सर्वहारा क्रांति को नेतृत्व देने का अनुभव नहीं था। सर्वहारा वर्ग द्वारा आगे ठेल दिये जाने पर उन्होंने कुछ चीजों को सही ढंग से अंजाम दिया, लेकिन अपनी राजनीतिक चेतना की कमी के कारण उन्होंने बहुतेरी ग़लतियां भी कीं। इनमें से एक प्रधान ग़लती यह थी कि वे दुश्मन की शांति वार्ताओं की धोखाधड़ी के शिकार हो गये जबकि वह वास्तव में युद्ध की तैयारी कर रहा था। उन्होंने दुश्मन को दीवार से जकड़ तो दिया लेकिन अपने विजयी आक्रमण का दबाव देश के भीतर बनाये नहीं रख सके और दुश्मन का पूरी तरह से सफाया नहीं कर सके। उन्होंने दुश्मन को उसकी झूठी शांति वार्ताओं की आड़ में दम ले लेने की मोहलत दे दी और इस अन्तराल में उसे प्रत्याक्रमण के लिए अपनी सेनाओं को पुनर्संगठित कर लेने का मौका मिल गया। उनके पास अपनी क्रांतिकारी विजय को विस्तार देने का अवसर था, पर उन्होंने इसे अपनी उंगलियों के बीच से फिसल जाने दिया....

जब वर्साय अपने छूरे तेज कर रहा था, तो पेरिस मतदान में लगा हुआ था; जब वर्साय युद्ध की तैयारी कर रहा था, तो पेरिस वार्ताएं कर रहा था। नतीजा यह हुआ कि वर्साय के दस्यु-दल अपने कसाइयों के छुरों के साथ पेरिस में घुस गये। उन्होंने अपने कब्जे में आये कम्यून के सदस्यों और सैनिकों को गोली मार दी; उन्होंने चर्च में शरण लिए हुए लोगों को गोली मार दी; उन्होंने हस्पतालों में पड़े घायल सैनिकों को गोली मार दी; उन्होंने बुजुर्ग मज़दूरों को यह कहते हुए गोली मार दी कि इनलोगों ने बार-बार बग़ावतें की हैं और ये खांटी अपराधी हैं; उन्होंने स्त्री-मजदूरों को यह कहते हुए गोली मार दी कि ये ''स्त्री अग्नि-बम'' हैं और यह कि ये स्त्रियों जैसी सिर्फ तभी लगती हैं जब ''मृत होती हैं''; उन्होंने बाल मजदूरों को यह कहकर गोली मार दी कि ''वे बड़े होकर बागी बनेंगे।'' यह हत्याकाण्ड, जिसे वे ''शिकार करना'' कहते थे, पूरे जून के महीने भर चलता रहा। पेरिस लाशों से भर गया, सैन खून की नदी बन गई और कम्यून इस लहू के समन्दर में डुबो दिया गया। तीस हजार से अधिक लोग इस जन-संहार में मारे गये और एक लाख से अधिक लोग बंदी बना लिये गये या निर्वासित कर दिये गये। वर्साय ने पेरिस की 'सदाशयता' और 'दरियादिली' का यह सिला दिया। इसकी झूठी शांति वार्ताओं और युद्ध की वास्तविक तैयारियों की चालबाजी की यह अंतिम परिणति थी। यह रक्त से लिखी गई एक कड़वी शिक्षा थी। इसने इसने हमें सिखाया कि सर्वहारा वर्ग को क्रांति को अंत तक चलाना होगा; कि भागते हुए डकैतों का पीछा किया जाना चाहिए और उन्हें तबाह कर देना चाहिए, कि डूबते हुए चूहों को पीट-पीट कर मार डालना चाहिए; कि दुश्मन को अपना दम फिर से हासिल कर लेने का मौका कतई नहीं दिया जाना चाहिए।

यदि यह कहा जा सकता है कि 95 वर्षों पहले पेरिस कम्यून के अधिकांश सदस्य थियेर की नकली शांति वार्ताओं और युद्ध की वास्तविक

तैयारियों के कुचक्र को सही समय पर भांप नहीं सके, और यह कि पर्याप्त अनुभव और समझदारी की कमी के कारण ऐसा हुआ, तो आज, जब खुश्चोवी संशोधनवादी अमेरिकी साम्राज्यवाद की फर्जी शांति और वास्तविक आक्रमण की नीति की सेवा में सबकुछ कर रहे हैं, वह समझदारी की कमी का मामला निश्चित रूप से नहीं है। खुश्चोवी संशोधनवादी पूरी तरह गद्दारी की अवस्थिति पर जा खड़े हुए हैं और प्रतिक्रांतिकारी दोहरे रणकौशल द्वारा सर्वहारा के क्रांतिकारी आंदोलन और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का गला घोंटने की कोशिश में अमेरिकी साम्राज्यवादियों के साथ सहयोग कर रहे हैं। फिर भी, समय आगे बढ़ रहा है, जनता आगे बढ़ रही है और क्रांति आगे बढ़ रही हैं। क्रांतिकारी जनता ज्यादा से ज्यादा अच्छे ढंग से यह समझती जा रही है कि प्रतिक्रांतिकारी दोहरे रणकौशल के विरोध में क्रांतिकारी दोहरे रणकौशल का किस प्रकार इस्तेमाल किया जाता है और क्रांति को अन्त तक कैसे चलाया जाता है। अपने सभी किस्म के प्रतिक्रांतिकारी दोहरे रणकौशलों के साथ साम्राज्यवादी, संशोधनवादी और सभी प्रतिक्रियावादी जनता के द्वारा अंतिम तौर पर, समूचा का समूचा, इतिहास के कूड़ेदानी के हवाले कर दिये जायेंगे।

पेरिस कम्यून की इक्कीसवीं वर्षगांठ के अवसर पर, एंगेल्स ने लिखा था: ''बुर्जुआ वर्ग को अपनी 14 जुलाई या 22 सितम्बर का उत्सव मनाने दो। सर्वहारा वर्ग का त्यौहार तो सभी जगह हमेशा 18 मार्च ही होगा।''

आज, जब हम सर्वहारा वर्ग का त्यौहार – पेरिस कम्यून के विद्रोह की 95वीं वर्षगांठ मना रहे हैं, दुनिया पर एक नज़र डालने पर एक महान क्रांतिकारी परिस्थिति दिखाई देती है जब ''चारों महासागर उफन रहे हैं, बादल और जल क्रोधोन्मत्त हो उमड़ रहे हैं; पांचो महाद्वीप प्रकम्पित हो रहे हैं, हवाएं और बिजलियां गरज रही हैं।'' इतिहास ने मार्क्स की उस भविष्यवाणी को पूरी तरह साकार कर दिया है, जो उन्होंने 95 वर्षों पहले की थी :

यदि कम्यून को कुचल भी दिया गया, तब भी संघर्ष सिर्फ स्थगित होगा। कम्यून के सिद्धान्त शाश्वत और अनश्वर हैं; जबतक मजदूर वर्ग अपनी मुक्ति अर्जित नहीं कर लेता, तबतक ये सिद्धान्त बार-बार अपनी घोषणा करते रहेंगे। पेरिस कम्यून का पतन हो सकता है, लेकिन जो सामाजिक क्रांति इसने प्रारम्भ की है, वह विजयी होगी। इसकी जमीन सर्वत्र मौजूद है।

(पीकिङ रिव्यू, सं. -15 अप्रैल, 1966), पृष्ठ 23-29)

सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय अमर रहे

पेरिस कम्यून की शतवार्षिक जयन्ती की स्मृति में

❐

''रनमिन रपाओ'', ''हुङ्छी'' और ''च्येफाङच्युन पाओ'' के सम्पादकीय विभाग (18 मार्च 1971)

मजदूरों का पेरिस और उसका कम्यून नए समाज के गौरवशाली अग्रदूत के रूप में सदा के लिए लोगों के आदर के पात्र बने रहेंगे। उसके शहीदों को मजदूर वर्ग के महान हृदय-मन्दिर में हमेशा के लिए जगह मिल गई है।

- कार्ल मार्क्स

●

यदि कम्यून को नष्ट भी कर दिया गया, तब भी संघर्ष सिर्फ स्थगित होगा। कम्यून के सिद्धान्त शाश्वत और अनश्वर हैं; जब तक मजदूर वर्ग मुक्त नहीं हो जाता, तब तक ये सिद्धान्त बार-बार प्रकट होते रहेंगे।

- कार्ल मार्क्स

1. पेरिस कम्यून के सिद्धान्त शाश्वत हैं

इस साल 18 मार्च को पेरिस कम्यून की शत वार्षिक जयन्ती है। महान नेता अध्यक्ष माओ की शिक्षा में पलते-बढ़ते चीनी कम्युनिस्ट और समूचे देश की जनता, सर्वहारा अन्तरराष्ट्रवाद की गहरी भावना रखते हुए सारी दुनिया के सर्वहारा वर्ग तथा क्रान्तिकारी जनता के साथ मिलकर बड़े जोश से यह महान **''सर्वहारा वर्ग का त्यौहार''**। मनाते हैं।

सौ साल पहले फ्रांस में पेरिस के सर्वहारा वर्ग तथा व्यापक जन-समुदाय ने वीरता से हथियारबन्द बगावत की और पेरिस कम्यून की स्थापना की। यह मानव जाति के इतिहास में अभ्युदित प्रथम सर्वहारा राजसत्ता थी और पूंजीपति वर्ग का तख्ता उलट देने व सर्वहारा अधिनायकत्व कायम करने में सर्वहारा वर्ग की प्रथम महान कोशिश थी।

पेरिस कम्यून ने पूंजीपति वर्ग की प्रतिक्रियावादी सरकार की सेना व पुलिस को भंग कर दिया और उनका स्थान सशस्त्र जनता को दे दिया; बन्दूक मजदूर वर्ग के हाथ में थी।

पेरिस कम्यून ने जनता को गुलाम बनाने वाली बुर्जुआ नौकरशाही मशीनरी को तोड़ दिया, मजदूर वर्ग की अपनी सरकार कायम की, मेहनतकश जनता के हितों की रक्षा करने के लिए सिलसिलेवार नीतियां लागू की और राज्य के प्रशासन में सक्रियता से भाग लेने के लिए जन-समुदाय को संगठित किया।

पेरिस कम्यून के वीरों ने सर्वहारा राजसत्ता की स्थापना करने और उसकी रक्षा करने के संग्राम में असाधारण क्रान्तिकारी पहलकदमी, असीम क्रान्तिकारी सक्रियता तथा आत्मबलिदान की वीरता दिखाई, इसलिए क्रान्तिकारी जनता पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनका आदर-सम्मान करती आती है।

हालांकि पेरिस कम्यून जल्लाद थिएर द्वारा बिस्मार्क के साथ सांठ-गांठ कर फौजी हमले व खूनी दमन किये जाने से असफल हो गया, लेकिन उसका ऐतिहासिक योगदान अमिट है। जैसा कि मार्क्स ने बतलाया था, **''18 मार्च का गौरवमय आन्दोलन मानव जाति को वर्ग-शासन से सदा के लिए मुक्त कराने वाला महान सामाजिक क्रान्ति का प्रभात है।''**[2]

उस समय जबकि बारूद के धुओं से ढके पेरिस में लड़ाई चल रही थी, मार्क्स ने यह बता दिया था : **''यदि कम्यून को नष्ट भी कर दिया गया, तब भी संघर्ष सिर्फ स्थगित होगा। कम्यून के सिद्धान्त शाश्वत और अनश्वर है; जब तक मजदूर वर्ग मुक्त नहीं हो जाता, तबतक ये सिद्धान्त बार-बार प्रकट होते रहेंगे।''**[3]

सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक मार्क्स और एंगेल्स ने पेरिस कम्यून के अमल के आधार पर जो क्रान्तिकारी सिद्धान्त निकाले हैं वे क्या हैं?

सारांश में कहा जाये वे ये हैं: "**मजदूर वर्ग बनी-बनाई राज्य-मशीनरी को ज्यों का त्यों अपने हाथ में नहीं ले सकता और उसे अपना मकसद पूरा करने के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकता।**"[4]

सर्वहारा वर्ग को पुरानी राज्य-मशीनरी को "**तोड़ने**" व "**चकनाचूर करने**"[5] के लिए क्रान्तिकारी हिंसा का इस्तेमाल करना चाहिए तथा "**सर्वहारा अधिनायकत्व लागू करना**"[6] चाहिए।

मार्क्स ने इस सिद्धान्त की व्याख्या करते समय जोर देकर बतलाया था : "**सर्वहारा अधिनायकत्व का पहला अवयव सर्वहारा वर्ग की सेना है। मजदूर वर्ग को अपनी मुक्ति का अधिकार युद्धभूमि में प्राप्त करना चाहिए।**"[7] सर्वहारा वर्ग क्रान्तिकारी सशस्त्र शक्तियों पर निर्भर रहकर ही प्रतिक्रियावादी वर्गों के शासन का तख्ता उलट सकता है और इससे आगे बढ़कर अपने समूचे ऐतिहासिक मिशन को पूरा कर सकता है।

मार्क्स ने यह भी बतलाया था कि सर्वहारा अधिनायकत्व वाले राज्य को "**एक संसदीय संस्था नहीं बल्कि एक कामकाजी संस्था होना चाहिए, प्रशासनीय होने के साथ-साथ विधि-निर्मात्री भी।**"[8]

जैसाकि लेनिन ने बतलाया था, "**राजसत्ता के विषय पर मार्क्सवाद का एक सबसे विलक्षण और अत्यन्त महत्वपूर्ण विचार" है 'सर्वहारा अधिनायकत्व' (जैसाकि मार्क्स और एंगेल्स ने पेरिस कम्यून के बाद उसे पुकारना शुरू किया था)**"।[9] पूंजीपति वर्ग की राज्य-मशीनरी को चकनाचूर करने और सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना करने पर डटे रहा जाये या पूंजीपति वर्ग की राज्य-मशीनरी को बरकरार रखा जाये और सर्वहारा अधिनायकत्व का विरोध किया जाये, यह पिछले सौ सालों में मार्क्सवाद के पक्ष और संशोधनवाद, सुधारवाद, अराजकतावाद व नाना प्रकार के पूंजीवादी व निम्न-पूंजीवादी विचारों के पक्ष के बीच बार-बार संघर्ष होने का केन्द्र-बिन्दु रहा है और अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में दो कार्यदिशाओं के बीच बार-बार संघर्ष होने का केन्द्र-बिन्दु रहा है। ठीक सर्वहारा अधिनायकत्व के इसी बुनियादी सवाल पर दूसरी इन्टरनेशनल के संशोधनवाद से लेकर आधुनिक संशोधनवाद तक जिसका केन्द्र सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट है, इन सबों ने मार्क्सवाद के साथ पूर्ण रूप से विश्वासघात किया है। पिछले सौ सालों के इतिहास ने पूरी तरह यह साबित कर दिखाया है कि सर्वहारा क्रान्ति तथा सर्वहारा अधिनायकत्व के बारे में मार्क्सवाद की शिक्षाएं अपराजेय हैं।

पेरिस कम्यून बगावत के 46 साल बाद, रूसी सर्वहारा वर्ग ने महान लेनिन के नेतृत्व में हथियार बन्द बगावत के जरिए अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय हासिल की और विश्व में सर्वहारा क्रान्ति व सर्वहारा अधिनायकत्व का एक नया युग आरम्भ किया। लेनिन ने यह कहा था कि पुरानी राज्य-मशीनरी को नेस्तनाबूद करने के रास्ते पर पेरिस कम्यून ने "**विश्व-ऐतिहासिक महत्व वाला पहला कदम रखा, सोवियत राजसत्ता ने दूसरा कदम रखा।**"[10]

पेरिस कम्यून बगावत के 78 साल बाद, चीनी जनता ने महान नेता अध्यक्ष माओ के नेतृत्व में क्रान्ति की विजय हासिल कर ली। अध्यक्ष माओ ने देहाती आधार-क्षेत्र कायम करने, देहाती इलाकों से शहरों को घेरने और अन्त में शहरों पर कब्जा करने का रास्ता खोल दिया और दीर्घकालीन क्रान्तिकारी युद्ध के जरिए साम्राज्यवाद, सामन्तवाद तथा नौकरशाही पूंजीवाद के प्रतिक्रियावादी शासन का तख्ता उलट देने, पुरानी राज्य-मशीनरी को नेस्तनाबूद कर देने और चीन में जनता का जनवादी अधिनायकत्व यानी सर्वहारा अधिनायकत्व कायम करने में चीनी जनता का नेतृत्व किया। इसके बाद से अध्यक्ष माओ सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति जारी रखने तथा प्रशस्त समाजवादी रास्ते पर विजय पूर्वक आगे बढ़ने में चीनी जनता का नेतृत्व करते आ रहे हैं।

पिछली शताब्दी से सारी दुनिया के सर्वहारा वर्ग और उत्पीड़ित जनता व उत्पीड़ित राष्ट्र, लहरों के समान एक के बाद एक आगे बढ़ते हुए, वीरता से संग्राम करते हुए तथा एक-दूसरे को समर्थन व प्रोत्साहन देते हुए समाजवादी क्रान्ति व राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति को अनवरत रूप से आगे बढ़ाते रहे हैं और अत्यन्त शानदार विजयें हासिल कर चुके हैं। जैसा कि कामरेड माओ त्से-तुङ ने बतलाया है, "**यह एक ऐसा ऐतिहासिक युग है जिसमें विश्व पूंजीवाद और साम्राज्यवाद अपने सर्वनाश की ओर बढ़ रहे हैं तथा विश्व समाजवाद और जनता की लोकशाही विजय की ओर अभियान कर रहे हैं।**"[11] पेरिस कम्यून का कार्य नई ऐतिहासिक स्थिति में तथा पहले से और ऊंची मंजिल में व्यापक रूप से विकसित हुआ है। समूची दुनिया में अत्यन्त भारी परिवर्तन हुए हैं।

मार्क्स और एंगेल्स ने पेरिस कम्यून की दसवीं जयन्ती के अवसर पर भरपूर क्रान्तिकारी जोश के साथ योरपीय मजदूर वर्ग से कहा था : "**कम्यून, जो पुरानी दुनिया के शासकों के विचार में पूर्ण रूप से नष्ट हो चुका है, पहले के किसी भी समय के मुकाबले आज और ज्यादा जीवन-शक्ति से ओतप्रोत है। इसलिए हम आप लोगों के साथ मिलकर यह नारा बुलन्द कर सकते हैं: कम्यून जिन्दाबाद!**"[12]

आज पेरिस कम्यून द्वारा उठाई गई क्रान्तिकारी मशाल की लपटें दुनिया भर में भभक रही हैं, साम्राज्यवाद, सामाजिक-साम्राज्यवाद तथा विभिन्न देशों के प्रतिक्रियावादियों के खात्मे का दिन अब दूर नहीं है। ऐसी परिस्थिति में पेरिस कम्यून की शतवार्षिक जयन्ती मनाते हुए सारी दुनिया के मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों, सर्वहारा वर्ग और क्रान्तिकारी जनता के पास पक्के विश्वास के साथ ये नारे बुलन्द करने के और ज्यादा सबब हैं: कम्यून जिन्दाबाद! सर्वहारा क्रान्ति व सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय अमर रहे!

पेरिस कम्यून की स्मृति मनाने में हमें चाहिए कि सर्वहारा क्रान्ति व सर्वहारा अधिनायकत्व के बारे में मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षाओं का अध्ययन करें, ऐतिहासिक अनुभव ग्रहण करें, आधुनिक संशोधनवाद जिसका केन्द्र सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट है, का खण्डन करें, मार्क्सवाद-लेनिनवाद की क्रान्तिकारी कार्यदिशा पर डटे रहें, तथा और भी बड़ी विजय प्राप्त करने के लिए सारी दुनिया की जनता के साथ एकजुट हो जायें।

2. क्रान्तिकारी जनता द्वारा बन्दूक को अपने अधिकार में रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण है

पेरिस कम्यून के ऐतिहासिक अनुभवों ने यह पूर्ण रूप से साबित कर दिया है कि क्रान्तिकारी सशस्त्र शक्तियों को अपने अधिकार में रखना सर्वहारा क्रान्ति व सर्वहारा अधिनायकत्व के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

पेरिस कम्यून के अनुभवों पर प्रकाश डालते समय लेनिन ने एंगेल्स के इस महत्वपूर्ण निष्कर्ष का हवाला दिया था कि फ्रांस में हर क्रान्ति के बाद मजदूर हमेशा हथियारबंद रहते थे, इसलिए राजसत्ता की बागडोर थामे हुए बुर्जुआ अधिनायकों का पहला काम यह था कि मजदूरों को निहत्था कर दिया जाये। लेनिन के विचार में एंगेल्स के इस निष्कर्ष ने "**मसले के सारतत्व को, और साथ ही राजसत्ता के प्रश्न के सारतत्व को भी (क्या उत्पीड़ित वर्ग के हाथ में हथियार है?) बहुत ही विलक्षण ढंग से पकड़ लिया है**"[13]

पेरिस कम्यून का जन्म सशस्त्र क्रान्ति

और सशस्त्र प्रतिक्रान्ति के बीच हुए घमासान संघर्ष में हुआ था। पेरिस कम्यून के 72 दिन हथियारबंद बगावत, सशस्त्र संघर्ष तथा सशस्त्र आत्मरक्षा के 72 दिन थे। ठीक इसी वजह से कि बन्दूक पेरिस के सर्वहारा वर्ग के हाथ में थी, बुर्जुआ प्रतिक्रियावादियों के प्राण उड़ गये थे। पेरिस कम्यून की जानलेवा गलती यह थी कि उसने प्रतिक्रान्ति के साथ ज्यादा उदारता बरती और फौरन ही वर्साई की ओर अभियान नहीं किया जिससे थिएर को क्रान्तिकारी पेरिस पर झपटने के उद्देश्य से अपनी प्रतिक्रियावादी फौज को जुटाने के लिए सांस लेने का मौका मिल गया। जैसा कि एंगेल्स ने कहा था, **''अगर पेरिस कम्यून ने पूंजीपति वर्ग के विरोध में सशस्त्र जनता के इस प्राधिकार का इस्तेमाल नहीं किया होता, तो क्या वह एक दिन तक भी टिका रह सकता था? दूसरी तरफ से देखा जाये, तो क्या हमारे पास यह आलोचना करने का सबब नहीं है कि कम्यून ने इस प्राधिकार का बहुत ही कम प्रयोग किया है?''**[14]

कामरेड माओ त्से-तुङ ने अत्यन्त सरल और बेहद स्पष्ट भाषा में सशस्त्र संघर्ष तथा जन-सेना के भारी महत्व का सारांश निकाला और यह सुप्रसिद्ध स्थापना पेश की कि **''राजनीतिक सत्ता का जन्म बन्दूक की नली से होता है।''**[15] तथा उन्होंने यह बताया कि **''राज्य सम्बन्धी मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार, सेना राजसत्ता का मुख्य तत्व होती है। जो कोई भी राजसत्ता पर कब्जा करना चाहता हो और उसे बनाये रखना चाहता हो, उसके पास एक शक्तिशाली सेना होनी चाहिए।''**[16]

हिंसात्मक क्रांति सर्वहारा क्रांति का एक सार्वभौमिक सिद्धान्त है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी को अवश्य ही इस सार्वभौमिक सिद्धान्त पर कायम रहना चाहिए और उसे अपने देश के ठोस अमल में इस्तेमाल करना चाहिए। ऐतिहासिक अनुभवों ने यह साबित कर दिखाया है कि किसी देश के सर्वहारा वर्ग और उत्पीड़ित जनता का राजसत्ता छीनना और क्रांति की विजय प्राप्त करना निरपवाद रूप से बन्दूक की ताकत के जरिए पूरे किये जाते हैं; ये सर्वहारा राजनीतिक पार्टी के नेतृत्व में, अपने देश की ठोस स्थितियों को ध्यान में रखते हुए, व्यापक जन-समुदाय को संघर्ष के लिए आंदोलित करने के आधार पर जनता की सशस्त्र शक्तियों का कदम-ब-कदम निर्माण करके और लोकयुद्ध चलाकर तथा साम्राज्यवाद व प्रतिक्रियावादियों के खिलाफ बार-बार संघर्ष चलाकर ही पूरे किये जाते हैं। यह बात रूसी क्रांति पर लागू होती है, चीनी क्रांति पर लागू होती है और अलबानिया, वियतनाम व कोरिया आदि देशों की क्रांतियों पर भी लागू होती है, और इसका कोई अपवाद नहीं है।

इसके विपरीत, यदि सर्वहारा राजनैतिक पार्टी क्रांतिकारी सशस्त्र शक्तियां कायम नहीं करती या इनका त्याग कर देती है, तो क्रांति को धक्का पहुंचता है। इस मामले में गम्भीर सबक देखने को मिले हैं: कुछ पार्टियां बन्दूक पर अधिकार न करने की वजह से साम्राज्यवाद तथा उसके पालतू कुत्तों के अचानक हमले तथा प्रतिक्रांतिकारी दमन के सामने लाचार हो गईं जिसके परिणामस्वरूप लाखों-लाख क्रांतिकारी लोगों की हत्या हो गई। कुछ पार्टियों ने एक ऐसी स्थिति में जबकि क्रांतिकारी जनता ने हथियार उठा लिये थे और जनता की सशस्त्र शक्तियों का काफी हद तक विकास हुआ था, पूंजीपति वर्ग की सरकार में ओहदा पाने के लिए या प्रतिक्रियावादियों के धोखे में आने की वजह से जनता की सशस्त्र शक्तियां सौंप दीं जिससे उन्हें क्रांति के फलों से हाथ धोना पड़ा।

पिछले करीब सौ सालों में बहुत सी कम्युनिस्ट पार्टियों ने चुनावों में भाग लिया है और संसद में शिरकत की है, लेकिन उनमें से कोई भी पार्टी इस तरीके से सर्वहारा अधिनायकत्व कायम नहीं कर सकी। यदि कम्युनिस्ट पार्टी ने संसद में बहुमत हासिल कर लिया हो और सरकार में शिरकत की हो, तो भी इसका मतलब यह नहीं कि राजसत्ता की पूंजीवादी प्रकृति बदल गई है, पुरानी राज्य-मशीनरी का चकनाचूर होना तो और भी दूर की बात है। प्रतिक्रियावादी शासक वर्ग चुनाव को अप्रभावी घोषित कर सकते हैं, संसद भंग कर सकते है या कम्युनिस्ट पार्टी को लात मारकर हटाने के लिए सीधे हिंसा का प्रयोग कर सकते हैं। अगर सर्वहारा राजनीतिक पार्टी जन-समुदाय में काम नहीं करती, सशस्त्र संघर्ष नहीं चलाती और संसदीय चुनाव में मग्न रहती है, तो वह केवल जन-समुदाय को निष्प्राण बनायेगी और अपने आपको भ्रष्ट करेगी। पूंजीपति वर्ग संसदीय चुनाव के जरिए कम्युनिस्ट पार्टी को खरीद लेता है और उसे संशोधनवादी पार्टी, पूंजीपति वर्ग की पार्टी में बदल देता है, क्या इतिहास में ऐसे तथ्य कम मिलते हैं? सर्वहारा वर्ग को राजसत्ता छीनने के लिए बन्दूक का सहारा लेना चाहिए और राजसत्ता की रक्षा करने के लिऐ भी बन्दूक का सहारा लेना चाहिए। मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी के नेतृत्व में चलने वाली जन सेना सर्वहारा अधिनायकत्व का मजबूत आधार स्तम्भ है और वह पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की रोकथाम करने वाले विभिन्न तत्वों में से एक मुख्य तत्व है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा से लैस जन-सेना के रहते देश के अन्दर व बाहर के वर्ग-संघर्ष में उत्पन्न होने वाली किसी भी जटिल स्थिति का मुकाबला किया जा सकता है और सर्वहारा वर्ग के राज्य की रक्षा की जा सकती है।

उत्पीड़ित राष्ट्रों का वर्तमान मुक्ति आंदोलन सर्वहारा विश्व-क्रान्ति का महत्वपूर्ण अंग है और उसका महान संश्रयकारी है। राष्ट्रीय जनवादी क्रांति और समाजवादी क्रांति आपस में सम्बन्ध भी रखती हैं और साथ ही एक दूसरे से भिन्न भी होती हैं : ये दो भिन्न मंजिलों का प्रतिनिधित्व करती हैं और स्वरूप में एक दूसरे से भिन्न होती हैं। लेकिन राष्ट्रीय जनवादी क्रांति की पूर्ण विजय की प्राप्ति के लिए भी, साम्राज्यवादियों तथा प्रतिक्रियावादियों से हथियारबंद ताकतों की आजमाइश करने को तैयार रहना चाहिए। उत्पीड़ित राष्ट्रों के लिए भी यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि वह बन्दूक पर अधिकार करें।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से साम्राज्यवाद और नया व पुराना उपनिवेशवाद, जिनका सरगना अमरीका है, लगातार आक्रमणकारी युद्ध छेड़ते रहे हैं तथा वे उन देशों व जनता का, जो स्वाधीनता के लिए संघर्ष चला रहे है या स्वाधीनता प्राप्त कर चुके हैं, दमन करने के लिए अधिकाधिक सशस्त्र हस्तक्षेप, सशस्त्र उन्मूलन और भाड़े के सैनिकों के द्वारा अतिक्रमण करने आदि हथकंडे अपनाते रहे है। अपूर्ण आंकड़ों के अनुसार, पिछले 25 सालों में अमरीकी साम्राज्यवाद द्वारा रचे और छेड़े गये सशस्त्र हस्तक्षेपों व सशस्त्र आक्रमणों की संख्या 50 से ऊपर तक पहुंच गई है। जहां तक उसके हाथों उकसाये गये सशस्त्र उन्मूलनों का ताल्लुक है, इनकी संख्या तो अनगिनत है। इसलिए, अपनी मुक्ति प्राप्त करने के लिए, अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता व देश की प्रभुसत्ता की रक्षा करने के लिए तथा साम्राज्यवाद व उसके पालतू कुत्तों की आक्रमणकारी व उन्मूलनकारी कार्यवाहियों का कारगर रूप से मुकाबला करने के लिए सभी उत्पीड़ित राष्ट्रों को खुद अपनी साम्राज्यवाद-विरोधी सशस्त्र शक्तियां कायम करनी चाहिए और आक्रमणकारी युद्ध का क्रांतिकारी युद्ध से विरोध करने के लिए हर समय तैयार रहना चाहिए। वियतनाम, लाओस और कम्बोडिया इन तीनों देशों की जनता द्वारा अमरीकी आक्रमण का मुकाबला करने व देश को बचाने के युद्ध ने सारी दुनिया के उत्पीड़ित राष्ट्रों व उत्पीड़ित जनता के लिए शानदार मिसाल कायम कर दी है। आक्रमण व उन्मूलन के खिलाफ एशिया, अफ्रीका व लातिन अमरीका के अन्य

बहुत से देशों व इलाकों की जनता के संघर्षों ने भी मूल्यवान अनुभव प्रदान किये हैं।

अध्यक्ष माओ ने "**सारी दुनिया के लोगो एक हो जाओ, अमरीकी आक्रमणकारियों तथा उनके तमाम पालतू कुत्तों को शिकस्त दो**" शीर्षक अपने गम्भीर वक्तव्य में यह बताया है कि "**कमजोर देश शहजोर देश को परास्त कर सकता है। छोटा देश बड़े देश को परास्त कर सकता है। छोटे देश की जनता बड़े देश के आक्रमण को निश्चय ही परास्त कर सकती है, बशर्ते कि वह संघर्ष के लिए उठ खड़ी होने का साहस करे, हथियार उठाने का साहस करे और अपने देश के भाग्य की बागडोर अपने हाथ में ले ले। यह इतिहास का एक नियम है।**"[17]

लोक युद्ध अमरीकी साम्राज्यवाद व उसके गुर्गों के खिलाफ एक अत्यन्त कारगर शस्त्र है। सारी दुनिया के सर्वहारा वर्ग और उत्पीड़ित जनता व उत्पीड़ित राष्ट्र हथियार उठा लेंगे और लड़ाइयां लड़ना सीख जायेंगे, चाहे उन्होंने पहले कभी ऐसा न किया हो। अमरीकी साम्राज्यवाद तथा उसके तमाम पालतू कुत्ते अन्त में अपने हाथों सुलगाई लोकयुद्ध की प्रचण्ड आग में जलकर भस्म हो जायेंगे।

3. क्रांति लाखों-करोड़ों जन-समुदाय का कार्य है

पेरिस कम्यून के ऐतिहासिक अनुभव हमें बताते हैं कि सर्वहारा क्रांति और सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय की प्राप्ति के लिए यह जरूरी है कि लाखों-करोड़ों जन-समुदाय की क्रांतिकारी सक्रियता पर भरोसा रखा जाये और जन-समुदाय की इतिहास का निर्माण करने की महान शक्ति को पूर्ण रूप से उजागर किया जाये। लेनिन ने कहा : "**लाखों-करोड़ों जागरूक जन-समुदाय की क्रांतिकारी कार्यवाहियों के बिना, जन-समुदाय की उमड़ती वीरता के बिना और कम्यून-काल के पेरिस के मजदूरों की चर्चा करते समय मार्क्स के कहे शब्दों में 'धरती को हिला देने वाले' दृढ़संकल्प व क्षमता के बिना तानाशाही व्यवस्था का खात्मा करना असम्भव है।**"[18]

सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक मार्क्स ने जन-समुदाय की क्रांतिकारी पहलकदमी को भारी महत्व दिया और क्रांतिकारी जन-आंदोलन के प्रति सही रुख अपनाने में हमारे लिए एक शानदार मिसाल कायम कर दी।

पेरिस कम्यून की स्थापना से पहले, 1870 की शरद में, मार्क्स ने यह बताया था कि फ्रांसीसी मजदूरों द्वारा बगावत करने की स्थिति अभी परिपक्व नहीं है। लेकिन मार्च 1871 में जब पेरिस के सर्वहारा वर्ग ने असीम क्रांतिकारी वीरता से बगावत करना शुरू कर दिया, तो उन्होंने फौरन एक शरीक की हैसियत से इस सर्वहारा क्रांति का डटकर समर्थन किया और उसकी मदद की। हालांकि मार्क्स ने कम्यून की गलतियां देखीं और कम्यून की विफलता का दूरदर्शन किया, लेकिन फिर भी उन्होंने इस क्रांति को फ्रांसीसी मजदूर वर्ग का सबसे गौरवमय कारनामा समझा। क्योंकि उन्होंने इस आंदोलन में "**अत्यन्त भारी महत्व का ऐतिहासिक अनुभव देखा, सर्वहारा विश्व-क्रांति की एक निश्चित प्रगति देखी और एक ऐसा अमली कदम देखा जो सैकड़ों प्रोग्रामों और तर्कों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण था।**"[19] उस समय मार्क्स ने एल. कुगेलमान के नाम अपने एक पत्र में भारी उत्साह के साथ प्रशंसा की कि "**इन पेरिसवासियों में क्या गजब का लचीलापन है, क्या गजब की ऐतिहासिक पहलकदमी है, क्या गजब का आत्मबलिदान की क्षमता है!**" "**इतनी महानता की ऐसी मिसाल इतिहास में नहीं मिलती**"[20]

इस पत्र में लेनिन ने सर्वहारा क्रांतिकारियों और अवसरवादियों के बीच जमीन आसमान का अन्तर देखा और उन्होंने यह आशा की कि "**यह पत्र हरेक पढ़े-लिखे रूसी मजदूर के घर में लगाया जायेगा।**"[21]

मार्क्सवादियों के विपरीत, तमाम अवसरवादी और नए व पुराने संशोधनवादी सर्वहारा क्रांति और सर्वहारा अधिनायकत्व का विरोध करते हैं, और वे अनिवार्य रूप से जन-समुदाय से बेहद खौफ और खार खाते हैं तथा क्रांतिकारी जन-आंदोलन की हंसी उड़ाते हैं, उसे कोसते हैं और उसकी जड़ काटते हैं। उस समय जबकि रूस में दिसम्बर 1905 की हथियारबंद बगावत विफल हो गई, प्लेखानोव ने अलग खड़े होकर जन-समुदाय की यह भर्त्सना की कि "उन्हें हथियार नहीं उठाने चाहिए थे"। लेनिन ने क्रांतिकारी जन-आंदोलन के प्रति प्लेखानोव के अपनाए रईसाना रुख का रोष के साथ खण्डन किया और यह कहकर उसकी कड़ी निंदा की कि वह मार्क्सवाद का एक बदनाम रूसी गद्दार है। लेनिन ने बताया कि 1905 के "आम पूर्वाभ्यास" के बिना 1917 की अक्तूबर क्रांति का विजयी होना असम्भव था।

1959 में हमारे महान शिक्षक अध्यक्ष माओ ने पार्टी-विरोधी फङ त-हाए दक्षिणपंथी-अवसरवादी गुट द्वारा क्रांतिकारी जन-आंदोलन पर लांछन लगाने और उसका विरोध करने की बेहूदा दलीलों की भर्त्सना करते समय मार्क्सवाद-विरोधी इन गद्दारों को तीखे तौर पर यह बताया :

"**कृपया आप लोग जरा यह देखिए कि मार्क्स और लेनिन ने पेरिस कम्यून पर कैसे टिप्पणी की और लेनिन ने रूसी क्रांति पर कैसे टिप्पणी की**"। "**क्या आप लोगों ने देखा है कि लेनिन ने गद्दार प्लेखानोव, उन 'बुर्जुआ सज्जनों व उनके पालतू कुत्तों' तथा 'मरणासन्न पूंजीपति वर्ग के व उस पर आश्रित रहने वाले निम्न-पूंजीवादी जनवादियों के कुत्तों और सुअरों' की किस तरह भर्त्सना की थी? अगर नहीं देखा, तो कृपया जरा देखिए तो सही!**"[22]

अध्यक्ष माओ ने इस ऐतिहासिक अनुभव से हमारी समूची पार्टी को गहरी शिक्षा दी और हमारे पार्टी सदस्यों व कार्यकर्ताओं से यह मांग की कि वे मार्क्स और लेनिन को अपने आदर्श मानकर क्रांतिकारी जन-आंदोलन के प्रति सही रुख अपनाएं।

"**आज दुनिया की मुख्य प्रवृत्ति क्रांति ही है।**"[23] सभी देशों की जनता की यह रोषपूर्ण गरज सारी दुनिया में गूंज रही है : अमरीकी आक्रमणकारियों और उनके तमाम पालतू कुत्तों का नाश हो! साम्राज्यवाद का रणनीतिक पृष्ठभाग साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष का अग्रिम मोर्चा बन गया है। हिन्दचीन के तीनों देशों की जनता द्वारा अमरीकी आक्रमण का मुकाबला करने व देश को बचाने के लिए छेड़े गये युद्ध के विजयपूर्ण विकास ने अमरीकी साम्राज्यवाद-विरोधी विश्वव्यापी संघर्ष को एक नई बुलन्दी पर पहुंचा दिया है। दो सर्वोपरि शक्तियों के प्रभुत्ववाद के खिलाफ संघर्ष अधिकाधिक जोर पकड़ता जा रहा है। एशिया और अफ्रीका में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन प्रचण्ड आग का रूप धारण करके तेजी से आगे बढ़ता जा रहा है। अमरीकी व जापानी प्रतिक्रियावादियों द्वारा जापानी सैन्यवाद को पुनर्जीवित करने के खिलाफ कोरिया, जापान और अन्य एशियाई देशों की जनता के संघर्ष दिन-ब-दिन उभरते जा रहे हैं फिलस्तीनी जनता और अन्य अरब जनता अमरीकी व इजराइली आक्रमणकारियों के खिलाफ संग्राम में निरन्तर आगे बढ़ती जा रही है। उत्तर अमरीका, योरप व ओशेनिया में अभूतपूर्व पैमाने पर क्रांतिकारी जन-आंदोलन फूट पड़े हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में मजदूर, विद्यार्थी, काले लोग और अन्य अल्पसंख्यक जातियों के लोग दिन-ब-दिन जागरूक होते जा रहे हैं और उन्होंने निक्सन सरकार के प्रतिक्रियावादी शासन और आक्रमणकारी नीति के खिलाफ क्रांतिकारी तूफान बरपा कर दिया है। अमरीकी साम्राज्यवाद के

''पिछवाड़े'' लातिन अमरीका में अमरीकी साम्राज्यवाद-विरोधी क्रोधाग्नि, जो लम्बे अरसे से जनता की छाती में दबी हुई थी, अब फूट पड़ी है, और राष्ट्रीय हितों और देश की प्रभुसत्ता की रक्षा करने के लिए मिलकर संघर्ष करने की नई स्थिति पैदा हो गई है। सामाजिक-साम्राज्यवाद के खिलाफ कुछ पूर्वी योरपीय देशों की जनता का क्रांतिकारी संघर्ष उठान पर है। उन इलाकों में भी, जो हमेशा अपेक्षाकृत रूप से शान्त रहे थे, क्रांति का बसन्त-गर्जन गूंज उठा है। ये सब संघर्ष एक दूसरे का साथ देते हुए और एक दूसरे को बढ़ावा देते हुए विश्व जनता के क्रांतिकारी आंदोलन की शक्तिशाली धारा बन गये हैं।

मौजूदा महान क्रांतिकारी आंदोलन के बारे में तीन विकल्प हो सकते हैं जन-समुदाय के आगे-आगे चलें और उनका नेतृत्व करें? या उनके पीछे-पीछे चलें और उंगली उठा-उठा कर उनकी आलोचना करते रहें? या उनके सामने खड़े होकर उनका विरोध करें? सभी क्रांतिकारी राजनीतिक पार्टियों और क्रांतिकारियों को इन तीनों में से कोई एक चुनना होगा। सच्ची मार्क्सवादी-लेनिनवादी राजनीतिक पार्टियों और तमाम क्रांतिकारियों को जन-समुदाय की क्रांतिकारी कार्यवाहियों का जोश के साथ समर्थन करना चाहिए, दृढ़ता के साथ जन-आंदोलन के आगे-आगे चलना चाहिए और जन-समुदाय का आगे बढ़ने में नेतृत्व करना चाहिए।

सर्वहारा राजनीतिक पार्टियों और तमाम क्रांतिकारियों को **''दुनिया का सामना करना चाहिए और तूफान का मुकाबला करना चाहिए; यह दुनिया जन-संघर्षों की विशाल दुनिया है तथा यह तूफान जन-संघर्षों का जबरदस्त तूफान है।''**[24] उन्हें जरूर जन-समुदाय के दुख-सुख में हाथ बंटाना चाहिए और अपने भाग्य को जन-समुदाय के भाग्य के साथ नत्थी करना चाहिए, नम्रता से उससे सीखना चाहिए और स्वेच्छा से उसका शिष्य बनना चाहिए, तथा जन-समुदाय की क्रांतिकारी पहलकदमी का पता लगाने में निपुण होना चाहिए और जन-समुदाय से बुद्धि व शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। सर्वहारा राजनीतिक पार्टी जन-आंदोलन के प्रचण्ड तूफान में कूदकर ही अपने आपको तपाकर फौलादी बना सकती है। सही प्रोग्राम व कार्यदिशा सिर्फ विशाल जन-समुदाय के वर्ग-संघर्ष के अमल के जरिए ही तैयार किये जा सकते हैं व उनका विकास किया जा सकता है तथा उन्हें जांचा-परखा जा सकता है और कार्यान्वित किया जा सकता है।

क्रांतिकारी जन-आंदोलन की मुख्य धारा हमेशा ही अच्छी होती है और समाज के विकास के अनुकूल होती है। यह स्वाभाविक ही है कि जन-आंदोलन में तरह-तरह की विचारात्मक प्रवृत्तियों का प्रभाव होता है, नाना प्रकार की दलबंदियां उदित होती हैं और तरह-तरह के व्यक्ति शरीक होते हैं। दुनिया में ऐसी कोई भी चीज नहीं है जो एकदम शुद्ध हो। संघर्ष के अमल के जरिए और बारम्बार तुलना करके व्यापक जन समुदाय आखिरकार यह पहचान लेगा कि क्या सही है और क्या गलत; वह आखिरकार संशोधनवाद और अन्य सभी गलत चीजों को त्याग देगा और मार्क्सवाद-लेनिनवाद की क्रांतिकारी सच्चाई अपना लेगा और उस पर महारत हासिल कर लेगा। सर्वहारा राजनीतिक पार्टियों को चाहिए कि वे जन-समुदाय के बीच जाएं, लम्बे अरसे तक कड़ी मेहनत और धीरज के साथ काम करें और इस प्रकार जन-समुदाय की राजनीतिक चेतना लगातार उन्नत करें और जन-आंदोलन का सही रास्ते पर आगे बढ़ने में मार्गदर्शन करें।

क्रांति का प्राथमिक महत्व वाला सवाल है दुश्मनों व दोस्तों के बीच फर्क करना, सच्चे दोस्तों के साथ एकता कायम करना और सच्चे दुश्मनों पर प्रहार करना। क्रांतिकारी जन-आंदोलन के विकास की यह मांग है कि क्रांतिकारी शक्तियों की भीतरी एकता को निरन्तर मजबूत बनाया जाये, और साम्राज्यवाद, संशोधनवाद व प्रतिक्रियावादियों की फूट डालने व तोड़-फोड़ करने की साजिशों को चकनाचूर किया जाये। जनता, जिसकी संख्या कुल आबादी के नब्बे फीसदी से ज्यादा हैं, यानी मजदूर, किसान, विद्यार्थी और वे तमाम लोग जो साम्राज्यवाद का उत्पीड़न सहना नहीं चाहते, आखिरकार क्रांति के लिए उठ खड़े हो जायेंगे। अमरीकी साम्राज्यवाद और उसके तमाम पालतू कुत्तों को शिकस्त देने के लिए यह जरूरी है कि व्यापक संयुक्त मोर्चा कायम किया जाये, दुश्मन को छोड़कर उन तमाम शक्तियों के साथ एकता कायम की जाये जिनके साथ एकता कायम की जा सकती है, और कठोर संघर्ष चलाया जाये।

कामरेड माओ त्से-तुङ ने बताया है : **''विशाल क्रांतिकारी जन-समुदाय पर सीधा भरोसा रखना ही कम्युनिस्ट पार्टी का एक बुनियादी सिद्धान्त है।''**[25] जब हम राजसत्ता की प्राप्ति के लिए लड़ते हैं तब हमें जन-समुदाय पर भरोसा रखना और जन-आंदोलन चलाना चाहिए। सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना के बाद जब हम समाजवादी क्रांति और समाजवादी निर्माण में लगते हैं। तब भी हमें जन-समुदाय पर भरोसा रखना, जन-आंदोलन चलाना व सभी कामों में जनदिशा पर कायम रहना चाहिए। **''यदि हम जनता पर भरोसा रखते है, जन-समुदाय की असीम सृजन-शक्ति पर पक्का विश्वास रखते है, तथा इस प्रकार जनता पर विश्वास करते हैं और उसके साथ एकरूप हो जाते है, तो हम हर मुश्किल पर काबू पा सकेंगे, तथा हमें कोई भी दुश्मन नहीं पछाड़ सकेगा और हम हर दुश्मन को पछाड़ देंगे।''**[26]

4. एक सच्ची मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी का होना जरूरी है

मार्क्स और एंगेल्स ने पेरिस कम्यून के अनुभवों का सारांश निकालते समय स्पष्ट रूप से यह बताया था : **''सम्पत्तिवान वर्गों की संयुक्त सत्ता के खिलाफ अपने संघर्ष में मजदूर वर्ग अपने को सम्पत्तिवान वर्गों द्वारा स्थापित तमाम पुरानी पार्टियों के विरुद्ध और उनसे भिन्न एक राजनीतिक पार्टी में संगठित करके ही एक वर्ग की हैसियत से कार्यवाही कर सकता है।''**[27] सर्वहारा क्रांति की विजय हासिल करने, सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना करने व उसे सुदृढ़ बनाने और वर्गों का खात्मा करने के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह एक लाजिमी शर्त है।

पेरिस कम्यून की असफलता का बुनियादी कारण यह था कि तत्कालीन ऐतिहासिक स्थिति की वजह से मार्क्सवाद को मजदूर आंदोलन में शासन का स्थान प्राप्त नहीं हो पाया था और एक ऐसी सर्वहारा क्रांतिकारी पार्टी स्थापित नहीं हो पाई थी जिसने मार्क्सवाद को अपना मार्गदर्शक विचार बनाया हो। दूसरी ओर, ब्लांकीवाद और प्रूदोंवाद जो उस समय पेरिस कम्यून में प्रमुख स्थान पर थे, सर्वहारा क्रांति को विजय की ओर नहीं ले जा सकते थे।

ऐतिहासिक अनुभवों से यह सिद्ध होता है कि जब एक उम्दा क्रांतिकारी स्थिति तथा जन-समुदाय की क्रांतिकारी सक्रियता मौजूद होती हैं, तो सर्वहारा वर्ग के एक सुदृढ़ नेतृत्व-केन्द्र का भी होना जरूरी है, यानी **''क्रांतिकारी पार्टी ... जिसका निर्माण मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रांतिकारी सिद्धान्त के आधार पर और मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रांतिकारी शैली में हुआ हो।''**[28] केवल एक ऐसी पार्टी ही साम्राज्यवाद और उसके पालतू कुत्तों को पराजित करने और क्रांति की विजय प्राप्त करने में सर्वहारा वर्ग और विशाल जन-समुदाय का नेतृत्व कर सकती है।

प्रथम विश्व युद्ध के काल में बहुत से

देशों में क्रांतिकारी स्थिति पैदा हुई थी। लेकिन चूंकि दूसरी इंटरनेशनल की लगभग सभी राजनीतिक पार्टियां पतित होकर संशोधनवादी, सोशल-शोविनिस्ट पार्टियों में बदल गई थीं, इसलिए यह बात तो दरकिनार ही थी कि वे राजसत्ता छीनने में सर्वहारा वर्ग का मार्गदर्शन कर सकतीं। सिर्फ रूस में लेनिन के हाथों संस्थापित बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति सफल हुई।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान और इसके बाद, चीन में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी, जिसके नेता अध्यक्ष माओ हैं, के नेतृत्व की ही बदौलत क्रांति विजयी हो गई; अन्य कुछ देशों में भी मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियों के ही नेतृत्व में क्रांतियां क्रमशः विजयी हो गईं या दीर्घकालीन क्रांतिकारी संघर्ष जारी रहे। लेकिन और कुछ देशों में पार्टियों में अवसरवादी, संशोधनवादी कार्यदिशा के हावी होने की वजह से क्रांति विफल हो गई।

आज, विश्व-क्रांति में अभूतपूर्व उम्दा स्थिति दिखाई दे रही है। वस्तुगत स्थिति की यह फौरी मांग है कि सच्ची मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी का सुदृढ़ नेतृत्व हो और एक ऐसी सर्वहारा क्रांतिकारी पार्टी का निर्माण किया जाये जो संशोधनवादी कार्य-दिशा से कोई सम्बन्ध न रखती हो और जो विचारधारात्मक, राजनीतिक व संगठनात्मक तौर पर सुदृढ़ हो और जनव्यापी हो।

क्रांति का नेतृत्व करने का कार्य सम्भालने के योग्य होने की खातिर सर्वहारा राजनीतिक पार्टी के लिए बुनियादी सवाल यह है कि वह मार्क्सवाद-लेनिनवाद को अपना मार्गदर्शक विचार बनाये, मार्क्सवाद-लेनिनवाद की सर्वव्यापी सच्चाई को अपने देश की क्रांति के ठोस व्यवहार के साथ मिलाये, और अपने देश की स्थिति के अनुकूल एक सही कार्यदिशा निर्धारित करे व उसे कार्यान्वित करे। कार्यदिशा सही हो तो कमजोर शक्ति बढ़कर मजबूत बन सकती है तथा सशस्त्र शक्तियों को कायम किया जा सकता है और राजसत्ता को प्राप्त किया जा सकता है। कार्यदिशा गलत हो तो क्रांति को धक्का लगेगा, और पाये हुए फलों से हाथ धोना पड़ेगा।

कामरेड माओ त्से-तुङ ने दीर्घकालीन संघर्ष में चीनी जनता की क्रांति का नेतृत्व करने के दौरान बारम्बार यह बताया : "**चीनी क्रांति के ठोस व्यवहार के सम्पर्क में आते ही मार्क्सवाद-लेनिनवाद की सर्वव्यापी सच्चाई ने चीनी क्रांति को एक बिल्कुल नए रंग में रंग दिया।**"[29] और "**मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्त को चीनी क्रांति के व्यवहार के साथ घनिष्ठता से मिलाना हमारी पार्टी का विचारात्मक उसूल रहा है।**"[30]

कामरेड माओ त्से-तुङ ने जापानी मजदूर दोस्तों के लिए लिखे अपने महत्वपूर्ण अभिलेख में इस बुनियादी उसूल की और साफ तौर पर व्याख्या करते हुए बताया : "**जापानी क्रांति निस्संदेह विजयी होगी, बशर्ते कि संजीदगी से मार्क्सवाद-लेनिनवाद की सर्वव्यापी सच्चाई को जापानी क्रांति के ठोस व्यवहार के साथ मिला दिया जाये।**"[31]

सर्वहारा राजनीतिक पार्टी को चाहिए कि वह मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बुनियादी सिद्धान्तों के अनुसार, मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिबिन्दु, दृष्टिकोण और तरीका अपनाकर समाज में वर्ग-सम्बन्धों की गहराई से जांच-पड़ताल और अध्ययन करे, अपने देश की मौजूदा स्थिति, इतिहास और अपने देश की क्रांति की विशेषताओं का ठोस रूप से विश्लेषण करे, अपने देश की क्रांति की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक सवाल स्वतंत्र रूप से हल करे। अन्तरराष्ट्रीय अनुभव सीखना आवश्यक है, लेकिन सर्वहारा राजनीतिक पार्टी को इन अनुभवों की यांत्रिक रूप से नकल नहीं करनी चाहिए, बल्कि इन्हें अपने देश की वास्तविक स्थिति के साथ मिलाते हुए अपने अनुभवों का सृजन करना चाहिए। सिर्फ ऐसा करने से ही वह क्रांति को विजय की ओर ले जा सकती है और सर्वहारा विश्व क्रांति के कार्य के लिए अपना योगदान कर सकती है।

सिद्धान्त को अमल के साथ मिलाने पर कायम रहने के लिए सर्वहारा राजनीतिक पार्टी को चाहिए कि वह जन-समुदाय के साथ घनिष्ठ सम्पर्क कायम रखे, उसके बीच रहे और "**जन-समुदाय से लेकर जन-समुदाय को ही लौटा देने**"[32] का नेतृत्वकारी तरीका लागू करे, ताकि पार्टी की सही कार्यदिशा और निर्देशक उसूल को जन-समुदाय की कार्यवाहियों में बदल सके। साथ ही उसे यह भी चाहिए कि वह अनुभवों और सबकों का निचोड़ निकालने में निपुण हो, आलोचना व आत्मालोचना करे, जनता के हित में सही बात पर दृढ़ता से डटी रहे और गलत बात को सुधारती रहे, व्यावहारिक संघर्ष के जरिये विकास के नियम खोज निकाले और फिर उनसे व्यावहारिक संघर्ष का मार्गदर्शन करे।

कामरेड माओ त्से-तुङ ने बताया है : "**पार्टी के भीतर, विभिन्न विचारों के बीच विरोध और संघर्ष लगातार चलता रहता है; यह पार्टी के भीतर समाज के विभिन्न वर्गों के बीच के अन्तरविरोधों तथा नए और पुराने के बीच के अन्तरविरोधों को प्रतिबिम्बित करता है।**"[33] अपनी राजनीतिक कार्यदिशा के सहीपन और अपनी संगठनात्मक मजबूती की गारंटी करने के लिए सर्वहारा राजनीतिक पार्टी को सभी प्रकार के अवसरवाद और संशोधनवाद के खिलाफ समझौताहीन संघर्ष करना चाहिए, पूंजीपति वर्ग व अन्य तमाम शोषक वर्गों की विचारधाराओं के खिलाफ समझौताहीन संघर्ष करना चाहिए।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद और संशोधनवाद के बीच का संघर्ष तथा अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में दो कार्यदिशाओं के बीच का संघर्ष दीर्घकालीन है। पिछले दस से ज्यादा वर्षों में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी, अलबानियाई श्रमिक पार्टी और दुनिया के तमाम सच्चे मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों ने एक साथ मिलकर विचारधारात्मक, सैद्धान्तिक और राजनीतिक तौर पर आधुनिक संशोधनवाद जिसका केन्द्र सोवियत संशोधनवाद है, के खिलाफ दृढ़ संघर्ष किया और महान विजय हासिल की है। लेकिन संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ है। सर्वहारा विश्व क्रांति को लगातार आगे बढ़ाने के लिए विभिन्न देशों की मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियों और क्रांतिकारी जनता का एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि आधुनिक संशोधनवाद जिसका केन्द्र सोवियत संशोधनवाद है, का खण्डन करना जारी रखा जाये और इस संघर्ष को अन्त तक चलाया जाये।

पूंजीपति वर्ग और अन्य सभी शोषक वर्गों की विचारधाराएं समाज में एक लम्बे अरसे से शासन के स्थान पर रही हैं। चाहे विकसित पूंजीवादी देशों में हो या आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों में, चाहे कम्युनिस्ट पार्टी को कानूनी स्थान प्राप्त हो या नहीं, चाहे सर्वहारा वर्ग द्वारा राजसत्ता प्राप्त करने से पहले हो या सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना के बाद, पूंजीपति वर्ग हमेशा ही विभिन्न तरीकों और रास्तों के जरिए विचारधारात्मक तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी पर असर डालने, उसे भ्रष्ट करने और "पिघलाने" के लिए भरसक कोशिश करता है। अगर सर्वहारा राजनीतिक पार्टी पूंजीवादी विचारधारा के हमले के खिलाफ दृढ़ता से संघर्ष न चलाये, तो वह अपनी विचारधारात्मक, राजनीतिक व संगठनात्मक स्वाधीनता को बरकरार नहीं रख सकेगी और वह पूंजीपति वर्ग और उसकी राजनीतिक पार्टी की दुम बन जायेगी। सर्वहारा राजनीतिक पार्टी तभी अपनी जुझारू शक्ति प्रदर्शित कर सकती है और सर्वहारा क्रांति व सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय प्राप्त कर सकती है जब वह सर्वहारा विश्व दृष्टिकोण से पूंजीपति वर्ग के प्रतिक्रियावादी विश्व दृष्टिकोण पर विजय प्राप्त करने के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद को खण्डन के हथियार के तौर पर इस्तेमाल करती है और विचारधारात्मक क्षेत्र में वर्ग-संघर्ष पर डटी रहती है।

5. आधुनिक संशोधनवादी पेरिस कम्यून के क्रांतिकारी सिद्धान्तों के गद्दार हैं

इस समय जबकि सारी दुनिया के सर्वहारा वर्ग और क्रांतिकारी लोग बड़ी धूमधाम के साथ पेरिस कम्यून की शतवार्षिक जयन्ती मना रहे हैं, सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट अपने आपको सजा-संवार कर रंगमंच पर चढ़ आया है तथा उसने **''पेरिस कम्यून के सिद्धान्तों से वफादार रहने''**[34] की लम्बी-चौड़ी बातें की है और अपने आपको पेरिस कम्यून के उत्तराधिकारी के रूप में पेश किया है। यह सचमुच बेहयाई की चरम सीमा है।

सोवियत संशोधनवादी गद्दारों को पेरिस कम्यून की चर्चा करने का क्या हक है? इन्हीं गद्दारों के गिरोह ने सोवियत संघ में पार्टी और राज्य का नेतृत्व नाजायज तरीके से हथिया लिया है, फलस्वरूप सोवियत राज्य जिसकी स्थापना लेनिन ने की थी और जिसकी रक्षा स्तालिन ने की थी, का राजनीतिक रंग बदल गया है इन्हीं गद्दारों ने सर्वहारा अधिनायकत्व को बुर्जुआ अधिनायकत्व में बदल डाला है और सामाजिक-साम्राज्यवाद और सामाजिक-फासिज्म लागू किया है। ये पेरिस कम्यून के क्रांतिकारी सिद्धान्तों के प्रति सरासर गद्दारी है।

खुश्चेव से लेकर ब्रेझनेव तक इन सब ने ''समूची जनता के राज्य'' के साइनबोर्ड के सहारे अपने बुर्जुआ अधिनायकत्व पर पर्दा डालने की कोशिश की है। खुश्चेव कहा करता था कि सोवियत संघ ''समूची जनता के राज्य में बदल चुका है''[35] आज ब्रेझनेव और उसके जैसे लोग यह कहते फिरते हैं कि उनका राज्य ''समूची जनता का सोवियत समाजवादी राज्य''[36] है, और वे ''सोवियत जनवाद'' लागू कर रहे हैं। यह तमाम की तमाम धोखेभरी बकवासें हैं।

सोवियत, रूसी सर्वहारा वर्ग का महान सृजन, मेहनतकश जनता के अपने देश के आप स्वामी बनने की अभिव्यक्ति थी तथा एक गौरवपूर्ण नाम था। लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी के नाम की तरह, सोवियत यह नाम बोल्शेविक इस्तेमाल कर सकते हैं और मेन्शेविक भी; मार्क्सवादी-लेनिनवादी इस्तेमाल कर सकते हैं और संशोधनवादी भी। सवाल का निर्णय नाम से नहीं बल्कि सारतत्व से होता है, रूप से नहीं बल्कि अन्तर्वस्तु से होता है। आज सोवियत संघ में सोवियत यह नाम नहीं बदला है, न ही राज्य का नाम बदला है, मगर वर्ग-अन्तर्वस्तु एकदम बदल गई है। सोवियत राज्य, जिसका नेतृत्व सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट ने नाजायज तरीके से हथिया लिया है, अब एक ऐसा साधन नहीं रहा जिसके जरिए सर्वहारा वर्ग पूंजीपति वर्ग का दमन करता है, बल्कि एक ऐसा साधन बन गया है जिसके जरिए पूंजीपति वर्ग, जो अपनी सत्ता को फिर से हथियाए हुए है, सर्वहारा वर्ग का दमन कर रहा है। सोवियत संशोधनवादी गद्दारों ने सोवियत संघ को मुट्ठी भर लोगों से बने एक नए किस्म के नौकरशाही इजारेदार पूंजीपति वर्ग के लिए स्वर्गलोक और लाखों-करोड़ों मेहनतकश जनता के लिए कालकोठरी बना दिया है। यही उनके कथित ''समूची जनता के सोवियत समाजवादी राज्य'' और ''सोवियत जनवाद'' की सम्पूर्ण अन्तर्वस्तु है। हकीकत बिल्कुल यह नहीं है कि ''समूची जनता का राज्य सर्वहारा अधिनायकत्व वाले राज्य का प्रत्यक्ष जारी रूप है''[37] बल्कि यह है कि ब्रेझनेव की कार्यदिशा खुश्चेव की कार्यदिशा का ''प्रत्यक्ष जारी रूप'' है। यही इस बात का सारतत्व है कि ब्रेझनेव और उसके जैसे लोग आज ''समूची जनता के राज्य'' के नारे से क्यों चिपके हुए हैं।

पेरिस कम्यून के क्रांतिकारी सिद्धान्तों से सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट का विश्वासघात इस बात में भी केन्द्रित रूप से अभिव्यक्त होता है कि वे सर्वहारा हिंसात्मक क्रांति का पागलपन से विरोध करते हैं। ब्रेझनेव और उसके जैसे लोग यह चीख-पुकार करते हैं कि ''सर्वहारा वर्ग के नेताओं को संघर्ष के हरेक दौर में हिंसा को न्यूनतम हद तक कम करना चाहिए'' और ''जोर-जबरदस्ती के और अधिक नरम रूप अपनाने चाहिए'', तथा ''सशस्त्र संघर्ष और गृह-युद्ध के साथ भारी कुर्बानियां और जन-समुदाय की मुसीबतें, उत्पादक-शक्तियों की बरबादी और श्रेष्ठ क्रांतिकारी कार्यकर्ताओं का विनाश जुड़े हुए हैं।'' अपनी ''शांतिपूर्ण संक्रमण'' की बेहूदा दलील के लिए बहाना गढ़ने में गद्दारों के इस गिरोह ने मनमाने ढंग से इतिहास को तोड़-मरोड़ कर पेश किया है और यह प्रचार किया है कि पेरिस कम्यून ''शुरू में'' ''लगभग एक रक्तपातहीन क्रांति''[38] था।

पेरिस कम्यून की क्रांति शुरू से अंत तक सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच जीवन मरण की भिड़ाई रही थी और क्रांति और प्रतिक्रांति के बीच का हिंसात्मक संघर्ष रही थी। पेरिस कम्यून बगावत से पहले, आधे साल से भी कम समय में पेरिस की जनता ने दो बार हथियारबंद बगावत की थी, लेकिन इन दोनों का प्रतिक्रियावादियों द्वारा खूनी दमन कर दिया गया। पेरिस कम्यून बगावत शुरू होने के बाद के संग्राम के दौरान दसियों हजार मजदूरों और अन्य मेहनतकश लोगों ने अपनी जान कुरबान कर दी थी। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि ''शुरू में'' यह क्रांति ''लगभग एक रक्तपातहीन क्रांति'' थी? मार्क्स ने बताया था : **''मजदूरों का पेरिस और उसका कम्यून नए समाज के गौरवशाली अग्रदूत के रूप में सदा के लिए लोगों के आदर के पात्र बने रहेंगे। उसके शहीदों को मजदूर वर्ग के महान हृदय-मंदिर में हमेशा के लिए जगह मिल गई है। उसके जल्लादों को इतिहास ने हमेशा के लिए उस सूली पर ठोंक दिया है जहां से उनके पुजारियों की प्रार्थनाएं किसी भी तरह उन्हें छुटकारा नहीं दिला सकेंगी।''**[39] अब सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट खुल्लमखुल्ला मैदान में उतरकर जल्लादों के लिए प्रार्थना करने वाले पुजारियों का पार्ट अदा कर रहा है। यह पेरिस कम्यून के शहीदों के प्रति घोर अपमान है।

सोवियत संशोधनवादी गद्दार प्रतिक्रांतिकारी हिंसा की वकालत करने में एड़ी-चोटी का जोर लगाते हैं, जबकि वे क्रांतिकारी हिंसा को दांत पीस-पीस कर कोसते हैं। साम्राज्यवाद और प्रतिक्रियावादियों के हिंसात्मक शासन तले मेहनतकश लोग हर रोज, हर घण्टे, हर मिनट अगण्य मुसीबतें झेलते हैं और बड़ी संख्या में मर जाते हैं। इस आदमखोर व्यवस्था का अन्त करने और जनता को गुलामी और शोषण से छुटकारा दिलाने के लिए ही उत्पीड़ित जनता हिंसात्मक क्रांति चलाती है। लेकिन सोवियत संशोधनवादी गद्दारों ने क्रांतिकारी सशस्त्र शक्तियों और क्रांतिकारी युद्धों पर यह कहकर बहुत से दोष लगाये हैं कि ये ''जनता के लिए मुसीबतें'' लायेंगे, ''कार्यकर्ताओं का विनाश'' करेंगे और ''उत्पादक-शक्तियों की बरबादी'' करेंगे, आदि-आदि। क्या इन गद्दारों के तर्क का मतलब यह नहीं हुआ कि साम्राज्यवाद और प्रतिक्रियावादियों द्वारा जनता का उत्पीड़न और कत्लेआम करना न्याय है, जबकि क्रांतिकारी जनता द्वारा हथियार उठाना और प्रतिरोध करना घोर अपराध है?

सोवियत संशोधनवादी गद्दार यह चाहते हैं कि विभिन्न देशों की जनता अपनी क्रांतिकारी हिंसा को ''न्यूनतम हद तक कम करे'', लेकिन वे खुद अपनी प्रतिक्रांतिकारी हिंसा को लगातार उच्चतम हद तक बढ़ाते जा रहे हैं। सोवियत जनता के जीवन-मरण की परवाह न करके ब्रेझनेव और उसके जैसे लोग ज्यादा से ज्यादा हवाई जहाज, तोपें, युद्धपोत, गाइडेड मिसाइल और नाभिकीय हथियार बनाने में ज्यादा से ज्यादा

रूबल खर्च करके सैन्यवाद और शस्त्रीकरण-दौड़ पर पूरा जोर लगा रहे हैं। इसी विशालकाय हिंसात्मक मशीनरी के बल पर वे देश के अन्दर व्यापक जनता का उत्पीड़न करते हैं और देश के बाहर नए जारशाहों के उपनिवेशी शासन को बरकरार रखते हैं तथा कुछ देशों को अपने काबू में रखने की हरचंद कोशिश करते हैं। वे इसी हिंसात्मक मशीनरी को अमरीकी साम्राज्यवाद के साथ सौदेबाजी करने, बल-राजनीति लागू करने और प्रभाव-क्षेत्र निर्धारित करने के लिए पूंजी के तौर पर इस्तेमाल करते हैं।

सोवियत संशोधनवादी गद्दार चाहते हैं कि क्रांतिकारी जनता प्रतिक्रांति के प्रति तथाकथित ''जोर-जबरदस्ती के नरम रूप'' अपनाए, लेकिन वे खुद क्रांतिकारी जनता के खिलाफ सबसे बर्बरतापूर्ण व सबसे क्रूरतापूर्ण हथकंडे अपनाते हैं।

यहां हम पूछना चाहते हैं :

क्या यह एक ''नरम'' रूप है कि तुम लोगों ने बड़ी तादाद में हथियारबंद फौजें व पुलिस भेजकर अपने देश की विभिन्न जातियों की जनता का दमन किया?

क्या यह एक ''नरम'' रूप है कि तुम लोगों ने कुछ पूर्वी यूरोपीय देशों और मंगोलिया लोक गणराज्य को अपने कड़े नियंत्रण में रखने के लिए वहां अपनी भारी फौजें तैनात कर दीं, यहां तक कि तुम लोगों ने अपने टैंक प्राग में भेजकर चेकोस्लावाकिया पर फौजी कब्जा जमा लिया?

और क्या यह एक ''नरम'' रूप है कि तुम लोग हर जगह फौजी विस्तार करते हो और दूसरे देशों के खिलाफ तरह-तरह की साजिशभरी उन्मूलनकारी कार्यवाहियां करते हो?

सोवियत संशोधनवादी गद्दारों की हरकतों से पूर्ण रूप से यह जाहिर होता है कि वे न सिर्फ हिंसात्मक क्रांति का विरोध करते हैं, बल्कि वे हिंसा का इस्तेमाल कर क्रांति का भी विरोध करते हैं वे दयावान का रूप धरे बैठे हैं मगर दरहकीकत वे **''मजदूरों का सबसे खूंखार दुश्मन है और भेड़ की खाल ओढ़े भेड़िये हैं''**।[40]

उधर, जापान में एक मियामोतो संशोधनवादी गुट भी है, जो हिंसात्मक क्रांति व सर्वहारा अधिनायकत्व का विरोध करने में एड़ी-चोटी का जोर लगाता है और यह ढोल पीटता है कि संसद-रास्ता अपनाने के लिए ''भरसक कोशिश करना जरूरी है''।[41] दिमाग खपा-खपा कर वह यह बकवास करता है कि शब्दकोश में ''हिंसा'' शब्द का अर्थ ''उद्दंडता'' या ''विधिहीनता'' होता है, और जनता को इस तरह की क्रांति नहीं करनी चाहिए''।[42] वह यह भी कहता है कि कुछ लोग ''सर्वहारा अधिनायकत्व'' इस शब्द से ''भयभीत'' हो गये हैं; इस शब्द का अनुवाद ''बहुत अनुपयुक्त'' है और बाद में ''इसका सही अर्थ में ठीक ठीक अनुवाद करना''[43] चाहिए। अमरीकी साम्राज्यवाद और जापानी सैन्यवाद की हिंसा को बनाये रखने और जापानी जनता की क्रांति का विरोध करने की खातिर मियामोतो गुट को शब्दकोश तक का सहारा लेना पड़ा है और शब्दार्थ की परख का खेल खेलना पड़ा है। इससे यह सिद्ध होता है कि आधुनिक संशोधनवाद मानसिक तौर पर किस हद तक पतित हो चुका है।

कामरेड माओ त्से-तुङ ने बताया है कि ''**समाजवादी व्यवस्था अन्त में पूंजीवादी व्यवस्था की जगह ले लेगी; यह मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र एक वस्तुगत नियम है।**''[44] आधुनिक संशोधनवाद का अव्वल नम्बर का प्रतिनिधि ख्रुश्चोव कब से ही इतिहास के कूड़े के ढेर में फेंका जा चुका है। ख्रुश्चोवी संशोधनवादी कार्यदिशा के अनुयायी नोवोत्नी और गोमुलका का भी क्रमशः पतन हो चुका है। यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि जो कोई भी इतिहास के नियमों के विरुद्ध आचरण करता है और पेरिस कम्यून के क्रांतिकारी सिद्धान्तों तथा सर्वहारा क्रांति व सर्वहारा अधिनायकत्व से गद्दारी करता है, उसका अच्छा अन्जाम कतई नहीं होगा।

6. सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रांति जारी रखने पर डटे रहो, तथा और बड़ी विजय प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करो

पेरिस कम्यून से और खासकर अक्तूबर क्रांति से लेकर अब तक के ऐतिहासिक अनुभव यह सिद्ध करते हैं कि सर्वहारा वर्ग द्वारा राजसत्ता प्राप्त किया जाना समाजवादी क्रांति की शुरुआत होती है, न कि इसकी समाप्ति। सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाने और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की रोकथाम करने के लिए यह लाजिमी है कि समाजवादी क्रांति को अन्त तक चलाया जाये।

सर्वहारा विश्व-क्रांति के आंदोलन ने टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता तय किया है। उस समय जबकि अक्टूबर क्रांति की जन्मभूमि में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की जा रही थी, यह कुछ समय के लिए एक प्रश्न सा बन गया था कि पेरिस कम्यून के क्रांतिकारी सिद्धान्त, अक्तूबर क्रांति और सर्वहारा अधिनायकत्व अब भी पुरअसर हैं या नहीं। साम्राज्यवादी और प्रतिक्रियावादी खुशी के मारे आपे से बाहर हो गये थे। उनका विचार था कि जब सोवियत संघ ''शांतिपूर्ण विकास'' के जरिए बदल गया है, तो क्या चीन में सर्वहारा अधिनायकत्व का तख्ता इसी तरीके से उलट देना सम्भव नहीं है? लेकिन महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति, जिसका सूत्रपात खुद अध्यक्ष माओ ने किया है और जो उन्हीं के नेतृत्व में चल रही है, की तोप की गूंज से बुर्जुआ हेडक्वार्टर को, जिसका सरगना गद्दार, दुश्मन-एजेण्ट व स्कैब ल्यू शाओ-ची था, नेस्तनाबूद कर दिया गया और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना करने का साम्राज्यवाद और आधुनिक संशोधनवाद का सुनहरा सपना खाक में मिला दिया गया।

अध्यक्ष माओ ने सर्वहारा अधिनायकत्व के सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों प्रकार के ऐतिहासिक अनुभवों का सर्वांगीण रूप से निचोड़ निकाला है, सर्वहारा क्रांति व सर्वहारा अधिनायकत्व के बारे में मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त को विरासत के रूप में ग्रहण किया है, उसकी रक्षा की है और उसका विकास किया है, सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रांति जारी रखने के बारे में महान शिक्षा पेश की है और मौजूदा जमाने के सबसे महत्वपूर्ण सवाल यानी सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाने और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की रोकथाम करने के सवाल को सैद्धान्तिक और व्यावहारिक तौर पर सुलझा दिया है। इस तरह उन्होंने मार्क्सवाद-लेनिनवाद के लिए महान व नया योगदान किया है और हमारे लिए सर्वहारा क्रांति को विजयपूर्वक अंत तक चलाने का रास्ता खोल दिया है। चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के दौरान, माओ त्से-तुङ विचारधारा और अध्यक्ष माओ की क्रांतिकारी कार्यदिशा करोड़ों-करोड़ जन-समुदाय के क्रांतिकारी अमल के साथ अधिकाधिक गहन रूप से मिलती जा रही हैं और यह सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाने के लिए एक सबसे महान शक्ति बन गई है।

समाजवादी समाज एक काफी लम्बा ऐतिहासिक दौर है। इस पूरे ऐतिहासिक दौर में वर्ग, वर्ग-अन्तरविरोध और वर्ग-संघर्ष मौजूद रहते हैं। संघर्ष फिर भी राजसत्ता के सवाल पर केन्द्रित रहता है। पराजित वर्ग अवश्य ही हाथ-पैर मारेगा। ये लोग अब भी मौजूद हैं और यह वर्ग अब भी मौजूद है। वे पूंजीवाद की पुनर्स्थापना करने के लिए निरपवाद रूप से कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर अपने एजेंटों की तलाश करने की कोशिश करते हैं। इसलिए, सर्वहारा वर्ग को न केवल थिएर व

बिस्मार्क जैसे दुश्मनों से सतर्क रहना चाहिए जो शस्त्र-बल के जरिए क्रांतिकारी राजसत्ता का तख्ता उलट देते हैं, बल्कि उसे खास तौर से ख्रुश्चोव और ब्रेझनेव जैसे कैरियरवादियों, षडयंत्रकारियों से भी सतर्क रहना चाहिए जो भीतर से पार्टी व राज्य का नेतृत्व नाजायज तरीके से हथिया लेते हैं। सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाने और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की रोकथाम करने के लिए सर्वहारा वर्ग को आर्थिक मोर्चे पर समाजवादी क्रांति चलाने के अलावा राजनीतिक और विचारधारात्मक व सांस्कृतिक मोर्चों पर भी समाजवादी क्रांति चलानी चाहिए तथा ऊपरी ढांचे में, जिसमें संस्कृति के सभी क्षेत्र शामिल हैं, पूंजीपति वर्ग पर चौतरफा अधिनायकत्व लागू करना चाहिए। इस बात की गारंटी करने के लिए कि हमारी पार्टी व राज्य हमेशा अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रांतिकारी कार्यदिशा का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ते जायें, पार्टी-सदस्यों, कार्यकर्ताओं व व्यापक जन-समुदाय को सबसे तीक्ष्ण हथियार-मार्क्सवाद-लेनिनवाद पर महारत हासिल करने में मदद दी जानी चाहिए ताकि वे सही व गलत कार्यदिशाओं के बीच और सच्चे व नकली मार्क्सवाद के बीच तथा भौतिकवाद और आदर्शवाद के बीच फर्क करने के योग्य हो जायें।

अध्यक्ष माओ ने बताया कि "**किसी एक समाजवादी देश की आखिरी विजय के लिए न सिर्फ इस बात की जरूरत होती है कि उसी देश का सर्वहारा वर्ग और विशाल जन-समुदाय प्रयत्न करे, बल्कि यह तकाजा भी है कि विश्व-क्रांति भी विजय प्राप्त करे, पूरी पृथ्वी पर मानव द्वारा मानव का शोषण करने की व्यवस्था का खात्मा हो, जिससे कि सारी मानव जाति मुक्त हो जाये।**"[45]

सर्वहारा क्रांतिकारी आंदोलन हमेशा ही अन्तरराष्ट्रीय होता है। इसलिए सर्वहारा क्रांति व सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय हासिल करने के लिए इन महान नारों को साकार बनाना जरूरी है — "**दुनिया के मजदूरो, एक हो**"[46] और "**सारी दुनिया के मजदूरो और उत्पीड़ित राष्ट्रो, एक हो।**"[47] पूंजीवादी देशों के सर्वहारा वर्ग को उपनिवेशों व अर्ध-उपनिवेशों की जनता के मुक्ति-संघर्ष का समर्थन करना चाहिए और उपनिवेशों अर्ध-उपनिवेशों की जनता को पूंजीवादी देशों के सर्वहारा वर्ग के मुक्ति-संघर्ष का समर्थन करना चाहिए, जो जनता अपनी क्रांति में विजय प्राप्त कर चुकी है उसे मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही जनता की सहायता करनी चाहिए। यही, सर्वहारा अन्तरराष्ट्रवाद का उसूल है।

चीनी क्रांति विश्व-क्रांति का एक अंग है। चीनी जनता का क्रांतिकारी कार्य और दुनिया के अन्य देशों की जनता का क्रांतिकारी कार्य एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं और एक ही सूत्र में बंधे हुए हैं। हम हमेशा से अन्य देशों की जनता के क्रांतिकारी संघर्ष को खुद अपना ही संघर्ष समझते हैं और उसे चीनी जनता के लिए सहायता मानते हैं। हमें अन्य देशों की क्रांतिकारी जनता से सीखना चाहिए और उसके संघर्ष का दृढ़तापूर्वक समर्थन करना चाहिए तथा अपना अपरिहार्य कर्तव्य निभाना चाहिए और बड़ी विजय प्राप्त करने के लिए हमें चाहिए कि हम सर्वहारा अन्तरराष्ट्रवाद की भावना प्रदर्शित करें और सारी दुनिया की सच्ची मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियों व संगठनों के साथ और सारी दुनिया के सर्वहारा वर्ग, उत्पीड़ित जनता व उत्पीड़ित राष्ट्रों के साथ अपनी जुझारू एकता को और अधिक मजबूत बनाएं।

सौ साल पहले, मार्क्स ने यह बताया था कि "**चाहे पेरिस में कम्यून का भाग्य कैसा भी क्यों न हो, वह सारी दुनिया में अपने पांव जमाकर ही रहेगा**"।[48] मार्क्स की यह महान भविष्यवाणी समय बीतने के साथ-साथ ज्वलन्त वास्तविकता में परिणत होती जा रही है। अतीत का सिंहावलोकन और भविष्य का अवलोकन करते हुए हम और अधिक पक्के विश्वास के साथ यह घोषित करते हैं कि साम्राज्यवाद, आधुनिक संशोधनवाद और सभी देशों के प्रतिक्रियावादियों का आखिरी खात्मा तथा सर्वहारा वर्ग और उत्पीड़ित जनता व उत्पीड़ित राष्ट्रों की पूर्ण मुक्ति अनिवार्य है!

"इण्टरनेशनल" गीत जिसके बोल पेरिस कम्यून के कवि यूज्नी पाटेर ने लिखे हैं, आज दुनिया के कोने-कोने में गूंज रहा है। "पुरानी दुनिया को चकनाचूर कर दो।", "हम दुनिया के मालिक होकर ही रहेंगे!" "एकजुट हो जाओ", "इण्टरनेशनल निश्चय ही साकार होकर रहेगा!" विश्व जनता की क्रांति के जबरदस्त तूफान के सामने साम्राज्यवादियों, सामाजिक-साम्राज्यवादियों और तमाम प्रतिक्रियावादियों को कांपने दो! क्रांति में "**मजदूरों के पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के सिवा और कुछ नही है। जीतने के लिए उनके सामने सारी दुनिया है।**"[49]

नोट

[1] एंगेल्स, "पेरिस कम्यून की 21वीं जयन्ती पर फ्रांसीसी मजदूरों के नाम अभिनन्दन-पत्र", मार्क्स-एंगेल्स ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 22, पृष्ठ 331।

[2] मार्क्स, "पेरिस कम्यून की पहली जयन्ती के उपलक्ष्य में आयोजित स्मृति-सभा के प्रस्ताव" मार्क्स-एंगेल्स ग्रन्थावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 18, पृष्ठ 61।

[3] मार्क्स, "पेरिस कम्यून के बारे में एक भाषण का रिकार्ड", मार्क्स-एंगेल्स ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 17, पृष्ठ 677।

[4] मार्क्स, "फ्रांस में गृहयुद्ध", मार्क्स-एंगेल्स ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 17, पृष्ठ 355।

[5] मार्क्स, "फ्रांस में गृहयुद्ध", मार्क्स-एंगेल्स ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 17, पृष्ठ 360। मार्क्स, "एल. कुगेलमान के नाम पत्र 12 अप्रैल 1871" "मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और स्तालिन : पेरिस कम्यून के बारे में", दूसरा चीनी संस्करण, जन प्रकाशन-गृह, 1971, पृष्ठ 215।

[6] मार्क्स, "इन्टरनेशलन की 7वीं जयन्ती की स्मृति में", मार्क्स-एंगेल्स ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 17, पृष्ठ 468।

[7] वही।

[8] मार्क्स, "फ्रांस में गृहयुद्ध", मार्क्स-एंगेल्स ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 17, पृष्ठ 358।

[9] लेनिन, "राजसत्ता और क्रांति", ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 25, पृष्ठ 389।

[10] लेनिन, "कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की पहली कांग्रेस", ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 28, पृष्ठ 443।

[11] माओ त्से-तुङ, "वर्तमान परिस्थिति और हमारे कार्य", संकलित रचनाएं, चीनी संस्करण, ग्रंथ 4, पृष्ठ 1260।

[12] मार्क्स और एंगेल्स, "पेरिस कम्यून की स्मृति में लंदन में आयोजित स्लेवोनिक सभा के सभापति के नाम", मार्क्स-एंगेल्स ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 19, पृष्ठ 271।

[13] लेनिन, "राजसत्ता और क्रांति", ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 25, पृष्ठ 436।

[14] एंगेल्स, "प्राधिकार के बारे में", मार्क्स-एंगेल्स ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 18, पृष्ठ 344।

[15] माओ त्से-तुङ, "युद्ध और रणनीति की समस्याएं", संकलित रचनाएं, चीनी संस्करण, ग्रंथ 2, पृष्ठ 535।

[16] वही।

[17] माओ त्से-तुङ, "सारी दुनिया के लोगो एक हो जाओ, अमरीकी आक्रमणकारियों तथा उनके तमाम पालतू कुत्तों को शिकस्त दो!", 20 मई 1970।

[18] लेनिन, "रूसी क्रांति मे सामाजिक-जनवादी पार्टी का भूमि-कार्यक्रम", ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 15, पृष्ठ 152।

[19] लेनिन, "राजसत्ता और क्रांति", ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 25, पृष्ठ 401।

[20] मार्क्स, "एल. कुगेलमान के नाम पत्र, 12 अप्रैल 1871", "मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और स्तालिन : पेरिस कम्यून के बारे में", दूसरा चीनी संस्करण, जन प्रकाशन-गृह, 1971, पृष्ठ 215।

[21] लेनिन, "एल. कुगेलमान के नाम कार्ल मार्क्स के पत्रों के रूसी अनुवाद की भूमिका", ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 12, पृष्ठ 101।

[22] "मार्क्सवादियों को किस प्रकार क्रांतिकारी जन-आंदोलन के प्रति सही रुख अपनाना चाहिए" पर अध्यक्ष माओ की टिप्पणी, 15 अगस्त 1959। इस टिप्पणी में अध्यक्ष माओ ने लेनिन के जिन शब्दों को उद्धृत किया है उसके लिए देखिए : लेनिन, "एक महान श्रीगणेश", ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 29, पृष्ठ 386; और "अक्टूबर क्रांति की चौथी जयन्ती", ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 33, पृष्ठ 35।

[23] देखिए नोट 17।

[24] माओ त्से-तुङ, "संगठित हो जाओ!", संकलित रचनाएं, चीनी संस्करण, ग्रंथ 3, पृष्ठ 936।

[25] "सर्वहारा नए खून को समाविष्ट करो", "हुङ्ची" का सम्पादकीय, अंक 4, 1968।

[26] माओ त्से-तुङ, "मिलीजुली सरकार के बारे में", संकलित रचनाएं, चीनी संस्करण, ग्रंथ 3, पृष्ठ 1097।

[27] मार्क्स और एंगेल्स, "हेग में आयोजित अन्तरराष्ट्रीय मजदूर संघ की आम कांग्रेस के प्रस्ताव", मार्क्स-एंगेल्स ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 18, पृष्ठ 165।

[28] माओ त्से-तुङ, "दुनिया की क्रांतिकारी शक्तियों एक हो जाओ, साम्राज्यवादी आक्रमण के खिलाफ संघर्ष करो!", संकलित रचनाएं, चीनी संस्करण, ग्रंथ 4, पृष्ठ 1360।

[29] माओ त्से-तुङ, "अपने अध्ययन में सुधार करो", संकलित रचनाएं, चीनी संस्करण, ग्रंथ 3, पृष्ठ 795।

[30] माओ त्से-तुङ, "चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की आठवीं राष्ट्रीय कांग्रेस में उद्घाटन-भाषण", 15 सितम्बर 1956।

[31] जापानी मजदूर दोस्तों के लिए अध्यक्ष माओ का महत्वपूर्ण अभिलेख (18 सितम्बर 1962), "रनमिन रपाओ", 18 सितम्बर 1968।

[32] माओ त्से-तुङ, "नेतृत्व के तरीकों से सम्बन्धित कुछ सवाल", संकलित रचनाएं, चीनी संस्करण, ग्रंथ 3, पृष्ठ 901।

[33] माओ त्से-तुङ, "अन्तरविरोध के बारे में", संकलित रचनाएं, चीनी संस्करण, ग्रंथ 1, पृष्ठ 294।

[34] "पेरिस कम्यून और वर्तमान वास्तविकता", सोवियत संशोधनवादी "कम्युनिस्ट" का लेख, अंक 2, 1971।

[35] सोवियत संशोधनवादी "22वीं कांग्रेस" में "सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम" के बारे में खुश्चेव की रिपोर्ट, 18 अक्तूबर 1961।

[36] लेनिन की शतवार्षिक जन्म-जयन्ती की "स्मृति" में आयोजित सभा में ब्रेझनेव की रिपोर्ट, 21 अप्रैल 1970।

[37] "समूची जनता का राज्य और लोकशाही", सोवियत संशोधनवादी "प्राव्दा" में प्रकाशित लेख, 7 जून 1970।

[38] सोवियत संघ में अगस्त 1970 में "मिस्ल" प्रकाशन-गृह द्वारा प्रकाशित एफ. कौन्सतेन्तीनोव और दूसरे लोगों द्वारा सम्पादित चीन-विरोधी विषैली पुस्तक, रूसी संस्करण, पृष्ठ 119-120।

[39] मार्क्स, "फ्रांस में गृहयुद्ध", मार्क्स-एंगेल्स ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 17, पृष्ठ 384।

[40] एंगेल्स, "'इंग्लैण्ड में मजदूर वर्ग की हालत' के दूसरे जर्मनी संस्करण की भूमिका, 1892", मार्क्स-एंगेल्स ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 22, पृष्ठ 373।

[41] सानजो नोसाका की एक वार्ता, "आकाहता", 3 जनवरी 1971।

[42] लेनिन की शतवार्षिक जन्म जयन्ती की "स्मृति" में जापानी संशोधनवादियों द्वारा आयोजित सभा में कोरेहीतो कुराहारा का भाषण, "आकहाता", 2 अप्रैल 1970।

[43] जापानी संशोधनवादी क्योतो कमेटी द्वारा बुलाई गई एक रैली में केनजी मियामोतो का भाषण, "आकाहाता", 20 मार्च 1970।

[44] माओ त्से-तुङ, "महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की 40वीं जयन्ती के उपलक्ष में सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत की मीटिंग में भाषण", 6 नवम्बर 1957।

[45] चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नवीं राष्ट्रीय कांग्रेस में दी गई रिपोर्ट से उद्धृत।

[46] मार्क्स और एंगेल्स, "कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र", चीनी संस्करण, जन प्रकाशन-गृह, 1964, पृष्ठ 58।

[47] लेनिन, "रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के मास्को पार्टी-संगठन के सक्रिय कार्यकर्ताओं के सम्मेलन में भाषण", ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 31, पृष्ठ 412।

[48] मार्क्स, "'फ्रांस में गृहयुद्ध' का पहला मसौदा", मार्क्स-एंगेल्स ग्रंथावली, चीनी संस्करण, ग्रंथ 17, पृष्ठ 587।

[49] देखिए नोट 46। ●

राहुल फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित

दायित्वबोध पुस्तिका श्रृंखला की कड़ियां

दायित्वबोध पुस्तिका - एक

अनश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं

(मार्क्सवाद के आरम्भ से लेकर आज तक की विकास यात्रा)

(अप्राप्य) - **दीपायन बोस**

दायित्वबोध पुस्तिका - दो

समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापन और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति

मूल्य - बारह रुपये - **शशिप्रकाश**

दायित्वबोध पुस्तिका - तीन

क्यों माओवाद?

मूल्य - दस रुपये - **शशिप्रकाश**

प्राप्ति के लिए लिखें अथवा सम्पर्क करें।

राहुल फाउण्डेशन, 3\274 विश्वासखण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ -226010

जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर - 273001

अध्याय ग्यारह

सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद विश्व साम्राज्यवाद की कतारों में शामिल

सामाजिक साम्राज्यवाद नाम से समाजवाद पर साररूप में साम्राज्यवाद है

साम्राज्यवाद के लगातार कमजोर होते हुए खत्म होते जाने की प्रक्रिया में ही, बीसवीं शताब्दी के मध्य में, सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद का उदय हुआ। लेनिन और स्तालिन के नेतृत्व के अन्तर्गत रूस एक महान समाजवादी देश रह चुका था। परन्तु स्तालिन की मृत्यु के बाद, ख्रुश्चोव और ब्रेझनेव के गद्दार गुट ने एक क्रान्तिकारी तख्तापलट करके पार्टी और राज्यसत्ता पर कब्जा कर लिया, बड़े पैमाने पर पूंजीवाद की पुनर्स्थापना कर डाली, और इस प्रकार सोवियत संघ को एक सामाजिक साम्राज्यवादी देश में तब्दील कर दिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान लेनिन ने उस समय जर्मन सामाजिक जनवादी पार्टी के नेता काउत्स्की की भर्त्सना करते हुए उसे ''सामाजिक साम्राज्यवादी'' अर्थात नाममात्र से समाजवादी, परन्तु वास्तव में साम्राज्यवादी कहा।[1] ब्रेझनेव का गद्दार गुट भी, काउत्स्की की भांति ही सामाजिक साम्राज्यवादी है। बस अन्तर सिर्फ यह है कि यह गुट केवल संशोधनवाद की पैरोकारी ही नहीं करता, बल्कि साम्राज्यवाद की रक्षा भी करता है। और इसमें भी कोढ़ में खाज यह है कि यह राज्यसत्ता पर भी काबिज है, और स्वयं लेनिन द्वारा सृजित महान देश को एक सामाजिक साम्राज्यवादी देश में तब्दील कर चुका है। सामाजिक साम्राज्यवाद ''समाजवादी'' लेबल चस्पां किया हुआ साम्राज्यवाद ही है। चूंकि यह लेनिन के अपने देश और एक समय के एक महान समाजवादी देश, सोवियत संघ में पैदा हुआ है, इसलिये यह कहीं अधिक भरमाने वाला और खतरनाक है। वस्तुतः यह अत्यन्त दुष्टतापूर्ण साम्राज्यवाद है।

राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद सामाजिक साम्राज्यवाद का मुख्य आर्थिक आधार है

सोवियत संघ में राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद का गठन

चाहे पूंजीवादी साम्राज्यवाद हो या सामाजिक साम्राज्यवाद, दोनों ही अपनी बुनियादी आर्थिक अभिलाक्षणिकताओं में एक समान हैं। उनका मुख्य आर्थिक आधार एकाधिकारी पूंजीवाद ही है। लेकिन पूंजीवादी साम्राज्यवादी देशों में, एकाधिकारी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के दो रूप हैं : निजी एकाधिकारी पूंजीवाद और राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद। सामाजिक साम्राज्यवादी देशों में एकाधिकारी पूंजीवाद हमेशा ही राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद के रूप में होता है। यह राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद ही सामाजिक साम्राज्यवाद का मुख्य आर्थिक आधार है। सामाजिक और पूंजीवादी साम्राज्यवाद का यह अन्तर उन ऐतिहासिक दशाओं द्वारा निर्धारित होता है जिनके अन्तर्गत एकाधिकारी पूंजी पैदा होती है।

पूंजीवादी साम्राज्यवादी देशों की एकाधिकारी पूंजी का सृजन निजी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत, गलाकाटू प्रतियोगिता की प्रक्रिया में, पूंजी संचय और संकेन्द्रण के जरिये, धीरे-धीरे हुआ है। निजी एकाधिकारी पूंजीवाद पहले प्रकट हुआ और बड़े पैमाने पर छा गया। लेकिन जब निजी एकाधिकारी पूंजीवाद एक निश्चित हद तक विकसित हो गया और जब एकाधिकारी पूंजी और राज्य सत्ता राज्य मशीनरी के साथ जुड़ कर एकाधिकारी पूंजी की सेवा में लग गयी, तभी राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद का उदय हुआ। सामाजिक साम्राज्यवादी देश में राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद तब अस्तित्व में आया जब सत्ताधारियों ने पूंजीवादी मार्ग अख्तियार करके समाजवादी देश की पार्टी और सरकारी मशीनरी पर कब्जा कर लिया, और इस प्रक्रिया में, समाजवादी अर्थव्यवस्था को रूपान्तरित करके

पूंजीवाद की पुनर्स्थापना कर दी।

सोवियत संघ के गद्दार गुट द्वारा पार्टी और सरकारी मशीनरी पर कब्जा कर लेने के बाद रूस के विशेषाधिकार प्राप्त बुर्जुआ संस्तर ने अपनी राजनीतिक और आर्थिक शक्ति का भारी पैमाने पर विस्तार किया, तथा पार्टी, सरकार, सेना और आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में एक प्रभुत्वशाली हैसियत ग्रहण करके एक ऐसा नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग गठित कर लिया जो समूची राज्य मशीनरी और सामाजिक सम्पदा पर नियंत्रण कर रहा है। इसी नये नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग ने राज्य सत्ता पर नियंत्रण कायम करके उसका इस्तेमाल समाजवादी स्वामित्व को पूंजीवादी मार्गावलम्बियों के स्वामित्व में तब्दील करने तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था को पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एवं राजकीय एकाधिकारी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में तब्दील करने में किया।

किसी समाज की अर्थव्यवस्था उसके लेबल द्वारा नहीं, बल्कि उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व द्वारा निर्धारित होती है। दूसरे शब्दों में, इसका निर्धारण इस बात से होगा कि उत्पादन के साधनों पर किसका स्वामित्व है, कौन उनका आवण्टन करता है और वे किसकी सेवा करते हैं? **ब्रेझनेव** और **खुश्चेव** के गद्दार गुट ने सोवियत संघ में पार्टी और सरकारी मशीनरी पर कब्जा कर लेने के बाद राजनीतिक और आर्थिक सत्ता पर भी पूरी तरह नियंत्रण कायम कर लिया और आर्थिक क्षेत्र में पूरी तरह से संशोधनवादी नीति लागू कर दी। इसने ''रुबल को श्रम योग्य के एक मापक के रूप में'' तथा ''कार्य-संचालन और प्रबन्धन में लगे **कम्युनिस्ट पार्टी** के सदस्यों का मूल्यांकन करने के लिए मुनाफा कमाने की योग्यता को ही सर्वोत्तम कसौटी के रूप में'' प्रतिष्ठित कर दिया। इसी सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट के समर्थन से, संशोधनवाद के एक अर्थशास्त्री, **लिबरमैन** ने राजकीय उद्यम प्रबन्धन की एक ऐसी योजना प्रस्तावित की जो मुनाफा और भौतिक प्रोत्साहन पर आधारित थी और इस ''प्रयोग'' को व्यापक पैमाने पर लागू कर दिया गया। जब **खुश्चेव** के बाद **ब्रेझनेव** सत्ता में आया, तब से यह ''नयी आर्थिक प्रणाली'' राष्ट्रव्यापी पैमाने पर संस्थाबद्ध कर दी गयी। अब इसमें पूंजीवाद का मुनाफा-सिद्धान्त नौकरशाहाना एकाधिकारी अल्पतंत्र द्वारा मेहनतकश लोगों के शोषण को अधिकाधिक बढ़ाते जाने के लिए कानूनी तौर पर स्थापित किया जा चुका है। इन ''तब्दीलियों'' के चलते, उत्पादन के साधन जो पहले सोवियत संघ की जनता के स्वामित्व में थे, अब इस नये नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग के कब्जे में हैं और उसी की सेवा में लगे हुए हैं। अब सोवियत संघ में मजदूरों और किसानों को उत्पादन के साधनों से वंचित किया जा चुका है और उन्हें एक बार फिर भाड़े का मजदूर बनाया जा चुका है। अब भले ही सोवियत संघ समाजवादी लेबल चिपकाये रहे, लेकिन पूर्ववर्ती समाजवादी स्वामित्व प्रणाली अब वास्तव में नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग के स्वामित्व में तब्दील की जा चुकी है।

समाजवादी समाज में, समाजवादी राजकीय स्वामित्व पर आधारित राज्य-संचालित अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का एक नेतृत्वकारी तत्व होती है। लेकिन एक बार जब संशोधनवादी गद्दार गुट समाजवादी अर्थव्यवस्था का नेतृत्व हड़प लेता है, तब वह स्वाभाविक तौर पर एक राजकीय एकाधिकारी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में तब्दील हो जाती है। इसका कारण यह है कि नया नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग उत्पादक शक्तियों को जितना ही अधिक अपने हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले राजकीय स्वामित्व के अन्तर्गत लगाता जाता है, उतना ही अधिक वह ''राज्य'' के नाम पर समूचे समाज की सम्पदा को अपने अधीन करता जाता है। इस ढंग से वह, राज्य के लेबल का इस्तेमाल करते हुए केवल इतना ही नहीं करता कि मेहनतकश जनता को धोखा देते रहना जारी रखे, बल्कि राजकीय पूंजीवाद के जरिये वह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर अपना नियंत्रण भी मजबूत करता जाता है। अतः सोवियत संघ की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की असाधारण अभिलाक्षणिकता यही है कि राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद ही सभी चीजों का नियंत्रण और संचालन करता है। लेकिन यह स्थिति पूंजीवादी साम्राज्यवादी देश में बिरले ही होती है। पूंजीवादी साम्राज्यवादी देश में, राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद के अच्छा-खासा विकास कर जाने के बावजूद, अभी वह उस स्थिति में नहीं पहुंच सका है जो सोवियत संघ में चल रही है। शोषण और उत्पीड़न के चलते, सोवियत मजदूर वर्ग और खासतौर से, भारी मेहनतकश आबादी, को भारी मुसीबत झेलनी पड़ रही है। लेनिन ने एक बार कहा था : ''उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व के अन्तर्गत, अधिकाधिक एकाधिकारीकरण और राष्ट्रीयकरण अपरिहार्य तौर पर मेहनतकश आबादी के शोषण और उत्पीड़न बढ़ायेंगे तथा विद्रोह करने में और अधिक कठिनाइयां ही उपस्थिति करेंगे। इसी प्रकार, प्रतिक्रियावादी सैनिक तानाशाही का मजबूत होना भी अपरिहार्यतः अन्य वर्गों से अधिकाधिक पूंजीवादी मुनाफा उगाहने और इस प्रकार मजदूर वर्ग को दशकों तक मुसीबत में डालने का ही काम करेगा, जिसका खामियाजा मजदूर वर्ग को उन अरबों डालरों को चुकाने में भुगतना पड़ेगा जिन्हें सैनिक तानाशाही उधार ले चुकी होती है।''[2]

जब हम **लेनिन** के इस उद्धरण को पढ़ते हैं, तो यह सोवियत राजकीय पूंजीवाद का ही एक सटीक आर्थिक विश्लेषण मालूम पड़ता है। रूस के एक सुप्रसिद्ध कवि **नेक्रासोव** ने एक बार पुराने जार के काले शासन के प्रति दुख और गुस्से का इजहार करते हुए कहा था, ''रूस में, भला कौन सुखी या स्वतंत्र हो सकता है?'' और आज के रूस में, हालत यह है कि **अक्टूबर क्रान्ति** के नायकों की संतानें इतनी ज्यादा मुसीबतें झेल रही हैं कि न तो उनको कोई सुख है और न ही बोलने की कोई आजादी। लेकिन ब्रेझनेव के नेतृत्व में नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग राजकीय कोष को लूट-लूटकर विलासिता की जिन्दगी जी रहा है, निर्मम और स्वेच्छाचारी शासन कर रहा है, और सोवियत संघ की जनता के खून-पसीने को स्वच्छन्दतापूर्वक चूसता जा रहा है। **ब्रेझनेव** के नेतृत्व वाला यही नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग सामाजिक साम्राज्यवाद का वर्गीय आधार और राजकीय पूंजीवाद का ''मूर्त रूप'' है।

ट्रस्ट सोवियत संशोधनवाद के एकाधिकारी संगठन का बुनियादी रूप है

सोवियत संशोधनवाद के राजकीय पूंजीवाद में संगठन का एक महत्वपूर्ण रूप ''ट्रस्ट'' है। लेकिन ये ट्रस्ट जिन तरीकों से कायम किये गये हैं वे पूंजीवादी देशों के एकाधिकारी संगठनों से भिन्न हैं। इनका निर्माण राज्य की बलपूर्वक कार्रवाइयों के जरिये तमाम मध्यम और छोटे आकार के उद्यमों को बड़े उद्यमों के साथ मिलाकर किया गया है।

एकाधिकारी संगठन के एक रूप के तौर पर ट्रस्ट सोवियत संघ में तेजी से विकसित हुआ है। 1961 में, ऐसे केवल 2 ही ट्रस्ट थे। लेकिन दस ही वर्ष बाद 1971 में, 1400 ट्रस्ट कायम हो गये, जिनके अधीन 14000 उद्यम और 77 लाख कर्मचारी आ गये। खनिज उद्यमों में से करीब एक तिहाई ट्रस्टों के अधीन आ चुके थे। सोवियत संघ की ''चौबीसवीं राष्ट्रीय कांग्रेस'' के अवसर पर **ब्रेझनेव** ने घोषणा की कि ''ट्रस्ट और विलीनीकृत उद्यम स्थापित करने की नीति को निश्चय ही अधिक दृढ़ता के साथ लागू किया जायेगा – भविष्य में उन्हें ही सामाजिक उत्पादन के लेखाजोखा की बुनियादी आर्थिक इकाई बनना है।'' सोवियत संशोधनवादी नेतृत्वकारी समूह के इस आदेश का पालन करते हुए ट्रस्ट प्रणाली 1971

से लेकर अब तक अपना प्रभाव क्षेत्र इतना विस्तृत कर चुकी है कि सोवियत संघ के सारे मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र इसके अधीन हो चुके हैं।

सोवियत संशोधनवादी ट्रस्ट तीन बुनियादी प्रकारों के है :

पहला, जिसमें विलीनीकृत उद्यम "कानूनी तौर पर अपनी स्वतंत्रता और हैसियत खो चुके हैं"। ऐसे ट्रस्ट "सामाजिक उत्पादन के लेखाजोखा की बुनियादी आर्थिक इकाई बन चुके हैं" और अंपने अधीनस्थ उद्यमों पर अपना सर्वाधिकार रखते हैं।

दूसरा, जिसमें कुछ विलीनीकृत उद्यम अपनी कानूनी स्वतंत्रता गंवा चुके हैं, जबकि कुछ ऐसे भी हैं जो अपनी "सापेक्षिक स्वतंत्रता बनाये हुए हैं"।

और तीसरा, जिसमें विलीनीकृत उद्यम "अभी भी स्वतंत्र" बने हुए हैं, परन्तु ट्रस्ट द्वारा ही संचालित होते हैं।

सोवियत संशोधनवाद ने उपर्युक्त तीनों प्रकार के ट्रस्टों में से पहले प्रकार के ट्रस्टों के विकास पर जोर दिया है। इसका मॉडल पश्चिमी एकाधिकारी पूंजीवादी उद्यमों के मॉडल पर तैयार किया गया है और इसमें उन्हीं के "संगठनात्मक प्रणाली वाले चार्ट" का "इस्तेमाल" किया गया है। सोवियत संशोधनवाद ने इस प्रकार के ट्रस्ट को "रूसी उद्योगों की एक संक्षिप्त और प्रसुप्त भावी संरचना रखने" और एक "विशिष्ट रूसी कंसार्टियम" के रूप में प्रचारित किया है। यह ट्रस्ट केवल उत्पादन में ही संलग्न नहीं है, बल्कि कच्चे मालों की आपूर्ति और उत्पादों के वितरण का भी काम करता है। इस ट्रस्ट और पश्चिमी एकाधिकारी पूंजीवादी उद्यम के बीच अन्तर यह है कि इस रूसी ट्रस्ट और राज्यसत्ता का आपसी गठबंधन अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ है। यह महज एक लेखाजोखा की बुनियादी आर्थिक इकाई ही नहीं है, बल्कि यह अंशतः उन कामों को भी अंजाम देता है जो पहले **सामान्य नियंत्रण ब्यूरो** या यहां तक कि **नियंत्रण मंत्रालय** द्वारा नियोजन, उत्पादन, आपूर्ति और वितरण के मामलों में किये जाते रहे हैं। बड़े और क्षेत्रीय ट्रस्ट "केवल एक एकीकृत उत्पादन इकाई ही नहीं बल्कि एक आर्थिक प्रबंधन निकाय भी" बन गये हैं। आर्थिक नियंत्रण से सम्बन्धित कार्यभार संभालने वाले विभिन्न मंत्रालयों और इन ट्रस्टों के बीच अब कोई मध्यवर्ती निकाय नहीं रह गये हैं। अब ट्रस्टों के प्रबंधक भी, सरकारी मंत्रालयों के सचिवों और उपसचिवों की भांति ही, सोवियत संशोधनवाद की "राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नेतृत्वकारी सदस्यों" के रूप में प्रतिष्ठित हो गये हैं। अब वे ब्रेझनेव के नेतृत्व में नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग के महत्वपूर्ण सदस्य हो चुके हैं। इस प्रकार, ये ट्रस्ट ऐसी सत्ता बन गये हैं जो राजकीय निकाय और एकाधिकारी संगठन को एकबद्ध करते हैं तथा ये अब राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद की प्रशासनिक प्रणाली के महत्वपूर्ण रूप बन चुके हैं।

ट्रस्ट के रूप में एकाधिकारी संगठन के अस्तित्व में आने के काफी पहले से ही सोवियत संशोधनवाद का राजकीय उद्यम पूंजीवादी रहा है। सोवियत संशोधनवाद के राजकीय उद्यम के अन्तर्गत मेहनतकश अवाम को बहुत पहले से ही उद्यम के स्वामित्व से वंचित करके नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग का गुलाम बना दिया गया है। उद्यमों का नेतृत्व वे ही करते हैं जो सोवियत संशोधनवाद के नेतृत्वकारी समूह के एजेण्ट हैं। "समाजवादी राजकीय उत्पादन उद्यमों के नियम विधानों" की आचार-संहिता के अनुसार उद्यमों के प्रबंधकों को "कर्मचारियों को भर्ती और बर्खास्त करने का अधिकार प्राप्त है और वे ही उद्यमों के कर्मचारियों को पुरस्कृत और दण्डित करने का निर्णय भी लेते हैं।" उन्हीं के पास स्टाफ कर्मचारियों और मजदूरों की उजरतें और बोनस तय करने तथा उत्पादन के साधनों की पुनः बिक्री कर डालने या उन्हें भाड़े पर उठा देने का भी अधिकार है। संक्षेप में कहें तो, ट्रस्ट के बगैर भी प्रबंधक और संयंत्र निदेशक राजकीय उद्यमों के सभी अधिकारों से लैस होकर, पहले ही से शासक बने हुए हैं, और इसी तरह मजदूरों की भारी आबादी भी पहले ही से इस नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग का गुलाम बन चुकी है। यह नये ढंग का बड़ा पूंजीपति वर्ग अपने नियंत्रण वाले राजकीय उद्यमों और ट्रस्टों का इस्तेमाल करते हुए, राज्य के नाम पर कराधानों तथा अधिग्रहीत मुनाफे के जरिए सोवियत मजदूर वर्ग के श्रम के फलों की अबाध लूट जारी रखे हुए है। इस लूट को मुट्ठी भर एकाधिकारी पूंजीपतियों की विलासिता भरी जिंदगी मुहैया कराने में सोवियत जनता का दमन करने में, आक्रमण और सैनिक तैयारियों में तथा अपनी सामाजिक साम्राज्यवादी नीति को आगे बढ़ाने में लगा दिया गया है।

जब **ब्रेझनेव** का गद्दार गुट मैन्युफैक्चरिंग और खनिज कर्म के क्षेत्रों में भारी पैमाने पर एकाधिकारी संगठन स्थापित करने में लगा हुआ था, तभी कृषि क्षेत्र में भी विविध प्रकार के एकाधिकारी संगठन उठ खड़े हो गये। इनके अन्तर्गत हैं :

(1) कृषि ट्रस्ट जो विशिष्टीकृत राजकीय फार्मों के ट्रस्ट हैं, जैसे मुर्गी फार्म, पशुफार्म और सब्जी फार्म ट्रस्ट,

(2) कई राजकीय फार्मों या सामूहिक फार्मों या राजकीय फार्मों और सामूहिक फार्मों के मध्यवर्ती संगठनों के रूप में बने कृषि ट्रस्ट और

(3) कृषि-उद्योग संश्रय, जिन्हें कृषि-उद्योग संयुक्त उद्यम भी कहा जाता है, जो ऐसे ट्रस्ट हैं जिनके जरिए कृषिगत उद्यम कृषि उत्पादों की प्रोसेसिंग करने के संयंत्रों को स्वयं संचालित करते हैं। इन कृषिगत एकाधिकारी संगठनों के जरिये, नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग ने व्यापक सोवियत ग्रामीण क्षेत्र पर अपनी मजबूत पकड़ बना ली है और उसे जमकर लूट रहा है।

"शेकिनो प्रयोग" सोवियत संशोधनवादी एकाधिकारी उद्यम द्वारा लागू की गयी उत्पीड़नकारी प्रणाली का मॉडल था

इन नव एकाधिकारी पूंजीवादी नौकरशाहों ने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण कायम करके और भाड़े पर मजदूर रखने की पूंजीवादी प्रणाली की पूरी तरह पुनर्स्थापना करके, भारी आबादी के शोषण और उत्पीड़न को और तेज कर दिया। 1967 से ही चल रहे तथाकथित "शेकिनो प्रयोग" ने सोवियत संघ में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना को भलीभांति सिद्ध कर दिया है।

शेकिनो एक रासायनिक उद्यम था जो मास्को के निकट स्थापित किया गया था। इसमें 7,000 से अधिक कर्मचारी कार्यरत थे, तथा इसमें रासायनिक उर्वरकों और अन्य रासायनिक उत्पादों का उत्पादन किया जाता था। अगस्त 1967 में, सोवियत संशोधनवादी नौकरशाहाना बुर्जुआ वर्ग की जरूरतों के लिए इस उद्यम ने उत्पादन बढ़ाने, श्रम उत्पादकता को ऊंचा उठाने और कर्मचारियों की संख्या घटाने के प्रति "कर्मचारियों के सरोकार को बढ़ाने के लिए" एक तथाकथित "आर्थिक प्रयोग" शुरू किया। इस "प्रयोग" ने कई कामों को एक साथ करने और कामों की कोटियों को एक साथ संयुक्त करने के उपाय लागू करके मजदूरों की श्रम सघनता में उत्तरोत्तर वृद्धि की, और इस प्रकार, सेवा के दायरों को विस्तारित कर दिया तथा कर्मचारियों की संख्या घटाने और श्रम सघनता बढ़ाने के लक्ष्य को भी पूरा कर लिया। लेकिन इसी दौरान, उद्यम के कुल वेतन कोष को कई वर्षों के लिए जाम कर देने का भी निर्णय लिया गया, और इस प्रकार, कर्मचारियों की छंटनी से वेतन कोष में जो बचत की गयी, उसे पूरी तरह इस उद्यम में लगे मुट्ठी भर विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग

की मनमर्जी के मुताबिक इस्तेमाल करने के लिए छोड़ दिया गया। इसी की डींग हांकते हुए **ब्रेझनेव** ने कहा कि यह "प्रयोग" एक पाश्चिमिकों के लिए एक सटीक मॉडल था, और तभी से इसे पूरे सोवियत संघ में व्यापक रूप से लागू कर दिया गया है।

वस्तुतः इस "शेकिनो प्रयोग" का मूल मन्तव्य "श्रम उत्पादकता बढ़ाकर श्रमशक्ति को घटाना" ही है ताकि उद्यम को "इसकी पूरी क्षमता को निचोड़ लेने" की दिशा में आगे बढ़ाया जा सके। लेकिन श्रम उत्पादकता को कैसे बढ़ाया गया? "शेकिनो प्रयोग" ने साबित कर दिया कि इसे श्रम सघनता बढ़ाकर ही बढ़ाया जा सका। जून 1971 के आंकड़ों के अनुसार, जबसे इस शेकिनो रासायनिक संयुक्त उद्यम ने यह "प्रयोग" लागू किया, तब से 1000 से अधिक मजदूरों की छंटनी की जा चुकी है, जो कि कुल स्टाफ कर्मचारियों और मजदूरों की संख्या 1/7 से अधिक ही है। इनमें से, 68 या 6 प्रतिशत मजदूरों को या तो अधिक यंत्रीकरण के कारण या श्रम सघनता में कमी के कारण बरखास्त कर दिया गया, जबकि 90 प्रतिशत से ज्यादा मजदूर तो श्रम सघनता में वृद्धि के कारण ही बरखास्त कर दिये गये। **मार्क्स** ने कहा है, "सम्पूर्ण पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली की यही कठिन समस्या है : कार्यदिवस को लम्बा करने, श्रम उत्पादकता में वृद्धि करने और इस प्रकार श्रम शक्ति को और अधिक सघन बनाते जाने जैसे उपायों के जरिये मुआवजारहित श्रम का बढ़ते जाना।"[3] लेकिन साम्राज्यवादी अवस्था में आकर, एकाधिकारी पूंजी द्वारा मजदूरों से मुवाअजारहित श्रम का शोषण सैकड़ों गुना बढ़ गया है। पूंजीवादी साम्राज्यवादी देशों में, अतिरिक्त मूल्य का शोषण बढ़ाने की गरज से श्रम सघनता में भारी वृद्धि करने हेतु मजदूरों को मजबूर करने की तथाकथित "वैज्ञानिक प्रबंधन विधियों" जैसे "टेलर सिस्टम" का प्रयोग एकाधिकारी पूंजी के द्वारा किया जाता रहा है। सोवियत संशोधनवाद के गद्दार गुट द्वारा लागू यह "शेकिनो प्रयोग" भी उसी "टेलर सिस्टम" की कार्बन कॉपी था, जिसकी **लेनिन** ने "खून पसीना चूसने वाली प्रणाली" कहकर कड़ी भर्त्सना की थी। वस्तुतः इसमें निहित कुत्सित मंशा यही थी कि एक रूसी को एक साथ कई काम करने को मजबूर कर दिया जाये और इस प्रकार उससे अधिक अतिरिक्त श्रम और अतिरिक्त मूल्य निचोड़ लिया जाये।

इस "शेकिनो प्रयोग" को लागू कर चुके 121 उद्यम जुलाई 1971 तक ही 65,000 लोगों को बरखास्त कर चुके थे। और आज स्थिति यह है कि सोवियत संघ में भारी बेरोजगारी पैदा हो चुकी है। सोवियत संशोधनवाद के राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद की यह आर्थिक प्रणाली पूंजी और भाड़े के मजदूरों के बीच के सम्बन्ध को इसकी आखिरी हद तक धकेल चुकी है। फलतः इसे सोवियत मजदूर वर्ग और व्यापक मेहनतकश आबादी का भारी विरोध भी झेलना पड़ रहा है और आगे भी झेलना पड़ेगा।

सोवियत संशोधनवादी "नये अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध" नवउपनिवेशवाद का ही दूसरा नाम है

आर्थिक एकीकरण सोवियत संशोधनवाद के नव उपनिवेशवादी अभियान का एक बड़ा हथकण्डा है

एकाधिकारी मुनाफे को अधिकाधिक बढ़ाते जाने की गरज से एकाधिकारी पूंजी, अपने देश के भीतर की जनता का अधिकाधिक शोषण करने के साथ ही, अपरिहार्यतः विदेशों में भी अपने पांव पसारने लगती है। पूंजी निर्यात करके और औपनिवेशिक नीतियां अपनाकर यह दूसरे देशों की जनता को गुलाम बना लेती है और उन्हें लूटने लगती है। अतः स्वाभाविक है कि सोवियत संशोधनवाद का एकाधिकारी पूंजीवाद भी केवल सोवियत मजदूरों और सोवियत किसानों के ही शोषण से संतुष्ट नहीं रह सकता, और इसीलिए अपरिहार्य तौर पर विदेशों में भी अपने पंजे फैलाता रहता है। इसके सबसे पहले शिकार इस "बड़े समाजवादी परिवार" के "बिरादराना देश" ही होते हैं।

ब्रेझनेव के गद्दार गुट ने कुछ पूर्वी यूरोपीय देशों और मंगोलिया को इस तथाकथित "बड़े समाजवादी परिवार" के जाल में फंसा रखा है। सोवियत संशोधनवाद और इन "बिरादराना देशों" के बीच के ये तथाकथित सम्बन्ध ही "नये समाजवादी अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध" हैं, जबकि वास्तव में ये इस साम्राज्यवादी सरमायेदार और इसके उपनिवेशों के बीच का एक बिल्ली-चूहा सम्बन्ध ही हैं। सोवियत संघ ने इन देशों पर अपना कड़ा नियंत्रण रखने के लिए सबसे बर्बर और दुष्टतापूर्ण हथकण्डे इस्तेमाल किये हैं। इसने "वारसा संधि" और अन्य द्विपक्षीय समझौतों का सहारा लेकर कुछ देशों में सामरिक उद्देश्य के तहत, भारी भरकम सशस्त्र सेनाएं तैनात कर रखी है। यहां तक कि यह चेकोस्लावाकिया पर आक्रमण करने के लिए खुल्लम खुल्ला कई हजार की फौजी टुकड़ियां भी एक समय में भेज चुका है। राजनीतिक रूप से, यह अपनी कठपुतली सरकारें गठित करवाने के लिए घूस, षड्यंत्र और यहां तक कि संगीनों का भी सहारा ले चुका है। और आर्थिक रूप से, यह "**पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद**" कोमेकॉन के जरिये तथाकथित "आर्थिक एकीकरण" लागू कर चुका है। कुछ पूर्वी यूरोपीय देश और मंगोलिया वस्तुतः इसके औपनिवेशिक शासन के ही अन्तर्गत हैं और दिल दहला देने वाला शोषण झेल रहे हैं।

सोवियत संशोधनवाद के सामाजिक साम्राज्यवाद द्वारा लागू किये गये इस "आर्थिक एकीकरण" के पीछे कुत्सित इरादा '**कोमेकॉन**' की राष्ट्रीय आर्थिक प्रणालियों को तहस-नहस कर डालना है, और एक ऐसी एकाश्मी, एकांगी औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था कायम करना है जिसके तहत इन देशों के भूभाग, जनसंख्या और स्रोत संसाधन सोवियत संशोधनवाद के सामाजिक साम्राज्यवाद के साथ एक "एकता" में नत्थी हो जायें। सोवियत संशोधनवाद का यह "अन्तरराष्ट्रीय श्रम विभाजन" और "उत्पादन का विशिष्टीकरण" दोनों इस "आर्थिक एकीकरण" के तहत उपर्युक्त "आर्थिक एकीकरण" के मकसद को पूरा करने की दिशा में ही संचालित हैं।

इस "आर्थिक एकीकरण" के नाम से "बिरादराना देशों" को अपना गुलाम बना लेने के लिए सोवियत संशोधनवाद जो हथकण्डे अपना रहा है, उनमें से एक है, **कोमेकॉन** के सदस्य देशों के ईंधन और कच्चे मालों के उद्योगों को तहस-नहस करना और सोवियत संशोधनवाद के लिए ऊंचे स्तर का एकाधिकार कायम कर लेना। **कोमेकॉन** के सरकारी और सोवियत संशोधनवादी स्रोतों द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार, 1966 से 1970 तक की अवधि के दौरान, बल्गेरिया, हंगरी, जर्मन जनवादी गणराज्य, पोलैण्ड और चेकोस्लोवाकिया को सोवियत संशोधनवादियों द्वारा निर्यात किये गये ईंधन और कच्चे मालों का प्रतिशत पेट्रोलियम के मामले में 95 प्रतिशत, कोयले में 61.9 प्रतिशत और रूई में 64.3 प्रतिशत था। इन सदस्य देशों को ईंधन और कच्चे मालों की आपूर्ति में सोवियत संशोधनवादियों का यह जो अत्यधिक एकाधिकार रहा है उसने इन देशों की नियति निर्धारित कर दी है।

"आर्थिक एकीकरण" के नाम से सोवियत संशोधनवाद द्वारा "बिरादराना देशों" को गुलाम बनाने के लिए अपनाया जाने वाला एक

दूसरा हथकण्डा सदस्य देशों को सोवियत संशोधनवादियों के लिए आवश्यक उत्पादों में विशिष्टीकरण हासिल करने के लिए मजबूर कर देने का रहा है। उदाहरण के लिए, पोलैण्ड को जहाज निर्माण उद्योग के लिए मजबूर किया गया, चेकोस्लोवाकिया को रेल की पटरियां बनाने, जर्मन जनवादी गणराज्य को खानकर्म सम्बन्धी उपकरण बनाने में, बल्गेरिया को सब्जी और फल उत्पादन में, तथा मंगोलिया को सोवियत संशोधनवादियों को मांस उपलब्ध कराने की गरज से पशुधन उद्योग में विशिष्टता प्राप्त करने के लिए मजबूर किया गया। इस प्रकार, ''बिरादराना देशों'' को सोवियत संशोधनवाद के लिए अधीनस्थ प्रोसेसिंग संयंत्रों, उद्यानों, सब्जी-बागानों और पशुधन चरागाहों के रूप में तब्दील कर दिया गया।

इस ''आर्थिक एकीकरण'' को अधिकाधिक तीव्र करते जाने तथा सदस्य देशों पर अधिकाधिक प्रभावी नियंत्रण कायम करते जाने के उद्देश्य से, सोवियत संशोधनवाद ने **''अन्तरराष्ट्रीय धातुकर्म उद्योग सहकारी संगठन''**, **अन्तरराष्ट्रीय रासायनिक इंजीनियरिंग उद्योग सहकारी संगठन**, **''अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक सहकारी बैंक''**, और **''अन्तरराष्ट्रीय निवेश बैंक''** जैसे **''अधि राष्ट्रीय संगठनों''** (Supranatinal organisatinons) का गठन कर डाला है। ये **'अधि राष्ट्रीय संगठन''** वस्तुतः अन्तरराष्ट्रीय एकाधिकारी संगठन ही हैं, जो सोवियत संशोधनवाद के राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद द्वारा नियंत्रित हैं। इनके जरिये ही सोवियत संशोधनवाद सदस्य देशों की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के महत्वपूर्ण विभागों पर अपना नियंत्रण कायम किये हुए हैं।

जब सोवियत संशोधनवाद ने ''बिरादराना देशों'' की गर्दनें अपने हाथ में पकड़ ली, और उन्हें सोवियत आवश्यकताओं के अनुरूप अपनी अर्थव्यवस्थाओं का एकांगी विकास करने के लिए मजबूर कर दिया, तब वह अपने एकाधिकार और औपनिवेशिक नियमों का इस्तेमाल करके व्यापार की मार्फत उन्हें सिलसिलेवार लूटने में सक्षम हो गया। सोवियत संशोधनवादी पत्र-पत्रिकाओं के अनुसार ही, 1970 में, सोवियत संशोधनवाद ने मंगोलिया के कुल विदेशी व्यापार का 90 प्रतिशत से अधिक भाग हथिया लिया, और इसी प्रकार बल्गेरिया के कुल विदेशी व्यापार का 50 प्रतिशत से अधिक भाग, जर्मन जनवादी गणराज्य के कुल विदेशी व्यापार का लगभग 40 प्रतिशत भाग और पोलैण्ड, हंगरी एवं चेकोस्लोवाकिया के कुल विदेशी व्यापार का लगभग एक तिहाई भाग हथिया लिया। अपनी प्रभुत्वशाली स्थिति का फायदा उठाकर सोवियत संशोधनवाद ने इन देशों के लिए प्रतिकूल शर्तों पर इनके साथ व्यापार करके इनका निर्मम शोषण किया है। सोवियत संघ ने मंगोलिया के साथ एक बाइसिकिल के बदले चार घोड़े और एक खिलौना मेमना के बदले एक जिन्दा मेमना लेने का व्यापार किया है। इसी तरह, चेकोस्लोवाकिया से आयात किये गये विद्युत रेल इंजनों पर उसने चेकोस्लोवाकिया को जो कीमत अदा की वह उसी चीज को पश्चिम जर्मनी से आयात करने पर दी गयी कीमत से 2/5 कम थी। परन्तु चेकोस्लोवाकिया को सोवियत संशोधनवादियों ने जो लौहअयस्क निर्यात किया उसकी कीमत, पश्चिम जर्मनी को आयात किये गये लौह अयस्क की कीमत से दो गुनी से भी अधिक वसूल की। इसी तरह सोवियत संशोधनवाद ने कुछ पूर्वी यूरोपीय देशों को जो परमाणु भट्टियां बेचीं उनकी अन्तरराष्ट्रीय बाजार की कीमतों के मुकाबले चार गुनी अधिक कीमतें वसूल की। **जर्मन जनवादी गणराज्य** के **योजना आयोग** के एक भूतपूर्व सदस्य ने शिकायत भी की कि सोवियत संघ से व्यापार करने से उनके देश को प्रति वर्ष 2 अरब मार्क का घाटा उठाना पड़ा।

पूंजीवादी साम्राज्यवाद की भांति ही सोवियत संशोधनवाद के इस सामाजिक साम्राज्यवाद ने भी, ''सहायता'' के नाम पर कुछ पूर्वी यूरोपीय देशों और मंगोलिया को पूंजी का निर्यात किया है। 1971 तक, सोवियत संशोधनवाद दीर्घकालिक ''ऋणों'' के रूप में कुल 2.15 अरब रुबल का पूंजी निर्यात कर चुका था। पूंजी निर्यात करके, इसने केवल सूद के रूप में ही भारी मुद्रा नहीं अर्जित की है, बल्कि इसी की बदौलत इसने ऋण प्राप्त करने वाले देशों के विकास की दिशा को भी अपने नियंत्रण में कर लिया है। इसके अतिरिक्त, इसी निर्यात के अवसर का लाभ उठाकर इसने ऊंची कीमतों पर ऐसे माल और उपकरण भी बेच डाले हैं जो और कहीं नहीं बिक सकते।

पूंजी निर्यात करने के साथ-साथ, सोवियत संशोधनवादी, ''आर्थिक एकीकरण'' में अपनी प्रभुत्वशाली स्थिति का लाभ उठाकर और सोवियत कच्चे मालों के निर्यात की सदस्य देशों में बढ़ती मांग के बहाने, कुछ देशों को सोवियत संयंत्रों के निर्माण और सोवियत खानों की खुदाई के लिए कोष और श्रमशक्ति प्रदान करने के लिए मजबूर भी करते रहे हैं। इस तरह वे नंगी लूट में लिप्त रहे हैं। उदाहरण के लिए, 1966 में चेकोस्लोवाकिया को मजबूर किया गया कि वह त्युलमेन तेलक्षेत्र के विकास के लिए इस्पात के पाइप और पेट्रोलियम सम्बन्धी उपकरण खरीदने हेतु सोवियत संशोधनवादियों को 500 मिलियन रूबल मुहैया करे। 1968 में, चेकोस्लावाकिया को फिर मजबूर किया गया कि वह साइबेरिया में प्राकृतिक गैस के लिए पाइपलाइन बिछाने के लिए बड़े आकार की पाइपें और भारी संख्या में ट्रकें मुहैया करे। सोवियत संशोधनवाद ने बलगेरिया से कड़ी मेहनत करने के लिए हजारों की संख्या में मजदूर भी मंगाये और इस प्रकार उनके अतिरिक्त श्रम का प्रत्यक्ष शोषण किया।

लेनिन ने एक बार पुराने जार की भर्त्सना करते हुए कहा था कि वह ''अपने पड़ोसी देशों के साथ सामन्ती दासता के अपने विशेषाधिकार वाले सिद्धान्त के अनुसार आचरण करता था।''

(4) लेकिन आज सोवियत संशोधनवाद का अपने पड़ोसी देशों के साथ व्यवहार तो उस पुराने जार के व्यवहार से भी बदतर है। सोवियत संशोधनवादी ''आर्थिक एकीकरण'' के उद्देश्य के तहत किया जा रहा ''अन्तराष्ट्रीय श्रम विभाजन'' और ''उत्पादन का विशिष्टीकरण'' वस्तुतः एक सरमायेदार और उसके उपनिवेशों के बीच एक प्रकार का ''श्रम विभाजन'' ही है जो ठीक वैसे ही है जैसे पुराने जापानी सैन्यवाद ने ''औद्योगिक जापान, और खेतिहर चीन'' के नारे के अन्तर्गत किया था। सोवियत संशोधनवाद का जो ''बड़ा समाजवादी परिवार'' है वह हिटलर की जर्मनी की ''नयी यूरोपीय व्यवस्था'' और जापानी सैन्यवाद के ''पूर्वी एशियाई महान सह-सम्पन्नता क्षेत्र'' जैसे साम्राज्यवादी प्रभाव क्षेत्र का बस एक दूसरा नाम भर है।

''सहायता'' के नाम पर एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका में उपनिवेशवादी विस्तार की नीति को लागू करना

चूंकि सोवियत संशोधनवाद सामाजिक साम्राज्यवाद में तब्दील हो चुका है, अतः इसके लिए जरूरी ही है कि यह साम्राज्यवाद के नियामक नियमों का अनुसरण करे। इसीलिए यह स्वाभाविक ही है कि वह केवल अपने ''बड़े समाजवादी परिवार'' के भीतर अपनी उपनिवेशवादी हुकूमत चलाकर ही संतुष्ट नहीं होता, बल्कि अपने बिकाऊ मालों, कच्चे मालों और पूंजी निवेश के लिए विश्व बाजार के ज्यादा से ज्यादा हिस्से पर अपना एकाधिकार कायम करते जाने की कोशिश भी अपरिहार्यतः करता रहता है। और इसीलिए समृद्ध संसाधनों और पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं वाले एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के देश सोवियत संशोधनवादी औपनिवेशिक विस्तार के स्वाभाविक क्षेत्र बन चुके हैं।

वैसे सोवियत संशोधनवाद का गद्दार गुट कहने को तो यही कहता है कि यह एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका को "सहायता" देता है, परन्तु सच्चाई यह है कि इस "सहायता" के छद्मावरण में, इसकी हर कोशिश यही रहती है कि इन क्षेत्रों के कुछ देशों को यह अपने प्रभाव क्षेत्र में ले ले, और इस प्रकार तीसरी दुनिया के देशों पर अपना प्रभुत्व जमा लेने की गरज से अमेरिकी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष कर सके।

इस तरह, "सोवियत सहायता" ट्राय के काठ के घोड़े की भांति है जो "सहायता" प्राप्त करने वाले देशों में चौतरफा घुस पड़ती है और बहुत कठिन राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियां उन पर थोप देती है। इसमें मुख्यतः "सैनिक सहायता" ही होती है, जिसके तहत पुराने पड़ चुके सेना सम्बन्धी हार्डवेयर बेचे जाते हैं। यह हथकण्डा अपनाकर सोवियत संशोधनवाद "सहायता" प्राप्त करने वाले देशों को सैनिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से अपने नियंत्रण में रखता है तथा उनके भीतर हस्तक्षेप करता रहता है। सोवियत संशोधनवाद एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के देशों को प्रतिवर्ष 1 अरब रूबल की सहायता देता है जिसका 30 प्रतिशत "आर्थिक सहायता" के रूप में होता है। इसके लिए कुंजीभूत क्षेत्र मध्यपूर्व और फारस की खाड़ी वाले क्षेत्र हैं; दक्षिण एशियाई उपमहाद्वीप इसका दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र है। चूंकि मध्यपूर्व और फारस की खाड़ी के क्षेत्र सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और वहां तेल के भण्डार हैं इसलिए इन क्षेत्रों में सोवियत संशोधनवाद की पुरजोर कोशिश यही रहती है कि इनमें वह अपने नौसैनिक और हवाई अड्डे कायम कर ले, तेल की खोज, उसकी निकासी, उसके परिशोधन और परिवहन पर नियंत्रण कायम कर ले, और "सोवियत सहायता" के जरिये तेल की खरीद पर अपना एकाधिकार स्थापित कर ले। दक्षिण एशियाई उपमहाद्वीप केवल सामरिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि प्राकृतिक और मानवीय सम्पदा में भी भरपूर है। सोवियत संशोधनवाद ने इन क्षेत्रों के संसाधनों की विधिवत लूट की है और उनकी नीतियों में (व्यापार की अपनी अनुकूल शर्तों पर सेना सम्बन्धी हार्डवेयर और पूंजी के निर्यात के जरिये) हस्तक्षेप भी किया है और इस फिराक में है कि कब उपयुक्त मौका मिले और वह इन क्षेत्रों में अपने सैनिक अड्डे कायम कर ले।

दक्षिण एशियाई उपमहाद्वीप में, भारत सर्वाधिक "सोवियत सहायता" प्राप्त करता रहा है। इसकी आर्थिक नब्ज सोवियत संशोधनवाद के ही हाथ में रही है। 1970 के अन्त तक, सोवियत "सहायता" प्राप्त करने वाले भारतीय उद्यमों की बदौलत भारतीय औद्योगिक उत्पादन में इस "सहायता" के योगदान का प्रतिशत इस प्रकार रहा है : कुल इस्पात उत्पादन में 30 प्रतिशत, कुल तेल शोधन क्षमता में 60 प्रतिशत, कुल भारी मशीन उत्पादन में 85 प्रतिशत, कुल विद्युत क्षमता में 20 प्रतिशत, कुल तेल उत्पादों में 30 प्रतिशत और कुल बिजली पैदा करने वाले संयंत्रों में 60 प्रतिशत। इन "सहायता प्राप्त" परियोजनाओं में, इंजीनियरिंग डिजाइन निर्माण के चरण में पूरी तरह से सोवियत संशोधनवाद के एकाधिकार और नियंत्रण में रहे हैं। कार्य संचालन में भी भारत के लिए असम्भव था कि वह अपने आप को सोवियत संशोधनवाद के नियंत्रण से मुक्त रख सके। संयंत्रों की मरम्मत और कलपुर्जों एवं महत्वपूर्ण मालों की आपूर्ति के लिए इसे सोवियत संशोधनवादियों पर ही आश्रित रहना पड़ा है। इसके अतिरिक्त सोवियत संशोधनवाद ने भारत के उत्पादन पर इस मांग के तहत और भी नियंत्रण कर लिया कि वह "सोवियत सहायता" के एवज में वापसी-भुगतान जिन्सों में करे। भारत की कुछ चमड़े के जूते बनाने वाली फैक्टरियां, गारमेण्ट फैक्टरियां, रंग फैक्टरियां, चर्मशालाएं और बिजली के बल्ब बनाने वाली फैक्टरियां सोवियत संघ की मांग को पूरा करने के लिए ही खड़ी की गयीं। इन संयंत्रों के उत्पाद भारतीय उपभोग के लिए नहीं, ऋणों के वापसी भुगतान के तौर पर सोवियत संघ को निर्यात करने के लिए ही थे। यह इन्हीं दिनों की बात है जब सोवियत संशोधनवाद ने अपनी "सहायता" की आड़ में भारत के कच्चे मालों और सस्ते श्रम का फायदा उठाने और भारत को अपने अधीनस्थ प्रोसेसिंग संयंत्र में तब्दील कर डालने का प्रयास किया। इसीलिए भारतीय प्रेस चिल्ला उठा था कि "भारत एक ऐसा अण्डा है जो आराम से रूसी टोकरी में समा गया है।"

लेकिन सोवियत संशोधनवाद का गद्दार गुट यह डींग हांकता रहता है कि केवल सोवियत "सहायता" पर निर्भर होकर और "अन्तरराष्ट्रीय श्रम विभाजन" में शामिल होकर ही "विकासशील देश अपनी वास्तविक राजनीतिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता को निर्बाध रूप से हासिल कर सकते हैं तथा साम्राज्यवादी शक्ति का प्रतिरोध करने में सक्षम हो सकते हैं।" वस्तुतः यह अब तक का सबसे बड़ा झूठ है। यहां तक कि सोवियत संशोधनवाद को खुद यह स्वीकार करना पड़ा है कि उसके और विकासशील देशों के बीच श्रम विभाजन "पहले से चले आ रहे श्रम विभाजन द्वारा बहुत ज्यादा प्रभावित" हुआ है। इसकी विशेषता "औद्योगिक उत्पादों, और खासतौर से मशीनरी के बदले कच्चे मालों, कटिबंधीय उत्पादों और तेल का विनिमय" ही है। सोवियत संशोधनवादियों के कुल रबर आयात का 95 प्रतिशत तथा कपास आयात का 92 प्रतिशत एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका से आता है। वे मध्यपूर्व से तेल, चीले से तांबा, बोलिविया से टिन, पूर्वी अफ्रीका से मांस तथा सोमालिया से यूरेनियम के बदले अपनी पुरानी पड़ चुकी मशीनरी का निर्यात करते हैं। तो फिर क्या यह सच नहीं है कि "**औद्योगिक सोवियत संघ**" और "**खेतिहर एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका**" के बीच का यह "**अन्तरराष्ट्रीय श्रम विभाजन**" एक बादशाह और उसके अधीनस्थ उपनिवेशों के बीच के श्रम विभाजन जैसा ही है।

सोवियत संशोधनवाद का गद्दार गुट यह डींग हांकता है कि यह अपने ऋणों पर जो 2.5 प्रतिशत सालाना सूद लेता है, वह पूंजीवादी साम्राज्यवादी देशों द्वारा लिये जाने वाले सूद से काफी कम होता है, और कि उसके द्वारा दिये जाने वाले ऋण "निस्वार्थ सहायता" हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि सोवियत संशोधनवादियों द्वारा दिये जाने वाले ऋण शोषण के छुपे रूप भर हैं। यह शोषणकारी सूद दर उनके द्वारा आपूर्ति किये जाने वाले मालों की ऊंची कीमतों के रूप में वसूल कर ली जाती है। एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के देशों को दिये गये ये सोवियत ऋण सोवियत मालों और उनमें भी प्रमुख रूप से पुराने पड़ चुके हथियारों, पुराने उपकरणों और अन्तरराष्ट्रीय बाजार के लिए बेकार हो चुके मालों की खरीद करने के लिए ही दिये जाते हैं। ये उत्पाद अपनी गुणवत्ता में खराब और अपनी तकनोलाजी में पिछड़े ही नहीं होते बल्कि अपनी कीमतों में भी, अन्तरराष्ट्रीय बाजार की कीमतों के मुकाबले कभी 20 प्रतिशत, 30 प्रतिशत या यहां तक कि 100 प्रतिशत तक अधिक महंगे पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त, यह सामाजिक साम्राज्यवादी ऋणी देशों पर भुगतान वापसी के लिए प्रायः दबाव डालते रहते हैं और उन्हें सोवियत संघ को खास कच्चे मालों की आपूर्ति करने के लिए मजबूर करते रहते हैं। यह मालूम ही है कि सोवियत संघ ने मध्यपूर्व के एक देश के साथ इस मांग के साथ समझौता किया था कि वह देश उसे 1975 से लेकर 1980 तक अन्तरराष्ट्रीय बाजार कीमत से 20 प्रतिशत कम कीमत पर तेल देने के रूप में अपने ऋणों का वापसी भुगतान करे। जिस पर "निःस्वार्थ सहायता" का लेबल लगाया जाता है, वह वास्तव में निर्मम शोषण है।

सोवियत संशोधनवादियों का गद्दार गुट मौखिक रूप से वादा करता रहा है कि वह एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका की जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों का "पूर्ण समर्थन" करता रहेगा। परन्तु हकीकत यह

है कि उसने इन देशों की जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों को भीतर से खोखला कर देने के लिए सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी शक्तियों के साथ सांठ-गांठ किया है और अपने नव-उपनिवेशवाद को ही आगे बढ़ाया है। इसने विभिन्न देशों के प्रतिक्रियावादी ग्रुपों को क्रान्तिकारियों का कत्लेआम करने के लिए धन और हथियार दोनों की मदद दी है। इसने एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के कई देशों में तोड़-फोड़ की षड्यंत्रकारी कार्रवाइयों में शिरकत की है, एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के कई देशों में जनता के सशस्त्र संघर्षों को खत्म कर डालने की नीयत से इन देशों के प्रतिक्रियावादी ग्रुपों की मदद में सारे हथकण्डे अपनाये हैं, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों का दमन किया है, और सारी दुनिया में मिलिटरी पुलिस की भूमिका अदा की है।

सोवियत संशोधनवादी साम्राज्यवाद एक दूसरी अक्टूबर क्रान्ति की पूर्ववेला है

सोवियत संशोधनवादी साम्राज्यवाद की चरम परजीवी और सड़नशील प्रकृति

सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद एकाधिकारी पूंजीवाद है। यह अपनी मेहनतकश जनता का निर्मम, शोषण उत्पीड़न करता है तथा दूसरे देशों खासतौर से एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका की व्यापक जनता को भी निर्दयता से लूटता और गुलाम बनाता है। यह पूंजीवादी साम्राज्यवाद से भी बदतर है। लेकिन समूचे साम्राज्यवाद की भांति ही सोवियत संशोधनवादी राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद भी एक कागजी बाघ ही है। क्यों कि हर प्रकार का एकाधिकारी पूंजीवाद अनिवार्यतः एक ही साथ, परजीवी और सड़नशील पूंजीवाद है। यह मरणासन्न पूंजीवाद है। सोवियत संशोधनवादी राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद इसका अपवाद नहीं है। चाहे आर्थिक पहलू हो या राजनीतिक पहलू, सोवियत संशोधनवादी राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद हर संभव तरीके से अपनी चरम परजीवी और सड़नशील प्रकृति को ही जाहिर कर रहा है। सोवियत संघ और विश्व की जनता जल्दी ही इसे अजायबघर के हवाले कर देगी।

सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद की यह चरम सड़नशील प्रकृति सर्वप्रमुख रूप से इसके ठहरावग्रस्त होते आर्थिक विकास में प्रकट हुई है। सोवियत संशोधनवादी राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद के उत्पादन सम्बन्ध सामाजिक उत्पादन की शक्तियों को बुरी तरह से बाधित कर रहे हैं। जब सोवियत संघ एक समाजवादी देश था, तब 1929 से 1938 तक दस वर्षों की अवधि में इसका औद्योगिक उत्पादन 17.4 प्रतिशत की औसत सालाना दर से छलांग लगाकर आगे बढ़ता रहा। लेकिन जब यही सोवियत संघ सामाजिक साम्राज्यवाद में तब्दील हो गया, तब 1961 से 1970 तक दस वर्षों की अवधि में इसके औद्योगिक उत्पादन की औसत सालाना वृद्धि दर 1971 में 8.6 प्रतिशत से घटकर 7.7 प्रतिशत रह गयी और 1972 में तो 7 प्रतिशत से भी नीचे चली गयी। खुश्चेव और ब्रेझनेव के गद्दार गुट के शासन के अन्तर्गत, सोवियत संघ का कृषि उत्पादन तो और भी घट गया। फलतः कई बार गम्भीर कृषि संकट उठ खड़े होते रहे और अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया से भारी मात्रा में खाद्यान्न आयात करने पड़े। औद्योगिक मंदी, घटते कृषि उत्पादन, क्षीण होते पशुधन और बढ़ी मुद्रास्फीति के चलते, मालों की आपूर्ति में भारी कमी और बाजार में उनकी आपूर्ति की खस्ताहाली का आलम छा गया। मेहनतकश जनता की जीविका भी बदतर हो चली।

सामाजिक साम्राज्यवाद की चरम सड़नशील प्रकृति इसके उन्माद भरे सैनिक विस्तार और युद्ध सम्बन्धी तैयारियों में भी प्रकट हुई है। अपने विदेशी आक्रमण और विस्तार की कार्रवाइयों को आगे बढ़ाने के लिए ब्रेझनेव के गद्दार गुट के प्रतिनिधित्व वाले नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग ने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण करने की गरज से "अधिक से अधिक बन्दूकें और कम से कम मक्खन" की हिटलरी नीति का ही हर हालत में अनुसरण किया है। अनुमान है कि सोवियत संशोधनवादियों का सैन्य खर्च सरकारी सूत्रों द्वारा स्वीकृत आंकड़ों से तीन से चार गुना अधिक ही रहा है। 1970 के दशक से औसत वार्षिक सैन्य खर्च 80 अरब डालर या यों कहें कि राजकीय बजट के 30 प्रतिशत से भी अधिक हो चुका है। नौसैनिक वर्चस्व प्राप्त करने की होड़ में सोवियत संशोधनवाद ने अपनी नौसेना का भारी विस्तार कर लिया है। युद्धक जहाजों पर सैन्य खर्च तेजी से साल दर साल बढ़ता गया है। अनुमानों के अनुसार, इस मद में औसत सालाना खर्च 1960 के दशक में 2 अरब डालर था, जो 1970 में बढ़कर 3 अरब डालर हो गया जो अमेरिका द्वारा उसी वर्ष में युद्धक जहाजों पर किये गये खर्च से 0.9 अरब डालर अधिक था। इस तरह, सामाजिक सम्पदा की भारी मात्रा जनता के जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिए उत्पादन बढ़ाने पर खर्च करने के बजाय, युद्ध की तैयारियों तथा विदेशी आक्रमण और विस्तार की कार्रवाइयों को आगे बढ़ाने पर ही खर्च की जा रही है, जो सामाजिक साम्राज्यवाद की सड़नशील प्रकृति की ही प्रखर अभिव्यक्ति है।

सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद की सड़नशील प्रकृति उसके राजनीतिक प्रतिक्रियावाद और सामाजिक जीवन में भारी गिरावट के रूप में भी अभिव्यक्ति हो चुकी है। माओ त्से-तुङ ने कहा है कि "वर्तमान सोवियत संघ बुर्जुआ वर्ग की, बड़े बुर्जुआ वर्ग की तानाशाही है, जर्मन फासिस्ट शैली की तानाशाही, हिटलरी तानाशाही है।"[5] माओ के विश्लेषण ने सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद की वर्ग प्रकृति और उसकी सामाजिक उत्पत्ति को पूरी तरह उद्घाटित कर दिया है, तथा इसकी फासिस्ट प्रकृति एवं सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट के इस झूठ का पूरी तरह से पर्दाफाश कर दिया है कि सोवियत संघ "सम्पूर्ण जनता का देश" है। जब सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट सत्ता में आया तभी से यह अपना फासिस्ट तानाशाही तंत्र मजबूत करने में लग गया। अपनी जनता का दमन करने के लिए, इसने अपनी पुलिस और खुफिया एजेन्सियों को शक्तिशाली बनाने की गरज से उन्हें केवल आधुनिकतम वैज्ञानिक और तकनोलाजिकीय उपकरणों से लैस ही नहीं किया, बल्कि इसने फैक्टरियों, फार्मों, संगठनों और संघों में जनसमुदायों पर नियंत्रण रखने के लिए अपने खुफिया जासूस भी तैनात कर दिये। आज सोवियत संघ एक श्वेत आतंक के साये में है। जो कोई भी ब्रेझनेव गुट के प्रति असंतोष और प्रतिरोध दिखाने की जुर्रत करता है उस पर कड़ी नजर रखी जाती है, उसका पीछा किया जाता है, उससे कड़ी पूछताछ की जाती है या किसी "पागलखाने" में भेज दिया जाता है, या "सोवियत संघ की निंदा करने या उसकी सामाजिक व्यवस्था में तोड़फोड़ करने" का दोषी ठहराकर यातना शिविर या जेल में भेज दिया जाता है।

नग्न हिंसा द्वारा जनता का दमन-उत्पीड़न करने के साथ-साथ ब्रेझनेव के गद्दार गुट ने सोवियत जनता के बीच पूंजीवादी साम्राज्यवादी देशों की सड़ी-गली संस्कृति, अश्लील साहित्य और जीवन शैली का जहरीला प्रचार-प्रसार कर उसे पूरी तरह अपनी सांस्कृतिक जमीन से काट देने के लिए बहुत बारीक उपाय भी अपना रखे हैं। दुनिया के विचारधारात्मक रूप से सबसे पिछड़े, प्रतिक्रियावादी और सड़े-गले मूल्यों के लिए सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद एक बहुत उर्वर जमीन के रूप में

उपलब्ध हो चुका है।

सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद की चरम परजीवी और सड़नशील प्रकृति की एक और अभिव्यक्ति यह है कि ब्रेझनेव के गद्दार गुट के नेतृत्व में वहां का नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग साधारण मजदूरों और किसानों से काफी अधिक आमदनी कर रहा है। आज का यह अन्तर दस गुने से अधिक या यहां तक कि 100 गुना तक हो चुका है जो ऊंचे वेतनों, ऊंचे बोनसों और विविध प्रकार की व्यक्तिगत सब्सिडियों के रूप में परिलक्षित है। इस वर्ग ने भ्रष्टाचार में लिप्त होकर अपने निहायत निजी स्वार्थ सिद्ध करने और विलासता की जिन्दगी जीने के लिए अपने विशिष्ट आर्थिक और राजनीतिक विशेषाधिकारों को भी खूब इस्तेमाल किया है। इस नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग के साथ एक संशोधनवादी बुद्धिजीवी कुलीन तंत्र भी घनिष्ठता के साथ जुड़ा हुआ है। यह संशोधनवादी बुद्धिजीवी कुलीन तंत्र विचारधारात्मक क्षेत्र में इस नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग की सेवा करता है और उसी की तरह से विलासमय परजीवी जीवन बिताता है। युद्ध के आतंक और बुर्जुआ शान्तिवाद के एक मशहूर लेखक **शोलोखोव** अरबपति बन चुके हैं। उनके पास केवल अपनी निजी कार ही नहीं है, बल्कि एक निजी हवाई जहाज भी है। उनका बैंक में इतना धन जमा है कि वह खुद भी उसका हिसाब-किताब भूल जाया करते हैं।

संक्षेप में बात यह है कि एक सड़नशील सामाजिक व्यवस्था की अभिलाक्षणिकता वाला एक सड़ा हुआ परिवेश सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद के आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में पूरी तरह से परिव्याप्त हो चुका है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था जो गोबर के ढ़ेर पर उगे एक जहरीले फफूंद की भांति है, पूरी तरह से निष्प्राण है।

अमेरिकी साम्राज्यवाद और सोवियत संशोधनवाद के विरोध के एक नये ऐतिहासिक कालखण्ड की शुरुआत हो चुकी है

अपने देश के भीतर मेहनतकश आबादी के खूनी दमन और उत्पीड़न, ''बड़े समाजवादी परिवार'' के देशों पर निर्मम औपनिवेशिक शासन, और दुनिया के विभिन्न भागों पर आक्रमणकारी विस्तार ने अपरिहार्यतः सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद के विविध अन्तरविरोधों को तीव्र कर दिया है जिनसे उसे देश के भीतर और बाहर दोनों ही जगह निपटना पड़ रहा है।

जहां दमन है, वहां प्रतिरोध भी है। और इसीलिए सोवियत संशोधनवादी नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग को अपरिहार्य तौर पर सोवियत संघ की मेहनतकश आबादी का प्रतिरोध झेलना पड़ रहा है।

इस नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग के प्रति सोवियत जनता का प्रतिरोध कई विविध रूपों में हो रहा है। सोवियत संघ के कई क्षेत्रों में मजदूर सोवियत संशोधनवाद के सत्ताधारी गुट के प्रति अपना असंतोष और विरोध काम को धीमा करके, ड्यूटी के प्रति लापरवाही बरत कर और हड़ताल करके प्रदर्शित कर रहे हैं। कई स्थानों पर, सोवियत संशोधनवादी सत्ता की फासिस्ट तानाशाही के विरोध में क्रान्तिकारी जनसमुदाय कई बार प्रदर्शन कर चुके हैं। सोवियत संघ के लोगों ने विभिन्न क्षेत्रों में नियमित रूप से भूमिगत सामग्रियां प्रकाशित की है, पर्चे बांटे हैं, और सोवियत संशोधनवादी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के गुप्त रहस्यों का भण्डाफोड़ करते रहे है। अक्टूबर क्रांति की बहादुर संतानें सोवियत संशोधनवाद के इस नये जार के प्रतिक्रियावादी शासन के आगे कभी घुटने नहीं टेकेंगी। पुराने जार के काले शासन के अन्तर्गत, लेनिन ने पूरे विश्वास के साथ कहा था कि ''रूस का सर्वहारा वर्ग जारशाही के राजतंत्र से समूची मानवजाति को मुक्त करने के लिए कोई भी कसर बाकी नहीं छोड़ेगा।'' आज सोवियत सर्वहारा, किसानों और क्रांन्तिकारी बुद्धिजीवियों के लिए आवश्यक है कि वे लेनिन के इस आह्वान पर अमल करें और इस नये जार को उखाड़ फेंकने तथा सर्वहारा अधिनायकत्व को फिर से बहाल करने की कार्यवाही करें।

दूसरी बात यह है कि सोवियत संशोधनवादी नवउपनिवेशवाद द्वारा पीड़ित देश और जनगण तथा सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद के बीच अन्तरविरोध अधिकाधिक तीव्र होता जा रहा है।

सोवियत संशोधनवाद द्वारा लागू की गयी ''आर्थिक एकीकरण'' की नवउपनिवेशवादी नीति तथा कई पूर्वी यूरोपीय देशों और मंगोलिया के दासकरण एवं सुनियोजित लूट के चलते इन देशों में लूट विरोधी और प्रभुत्वविरोधी संघर्ष भी तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। सोवियत संशोधनवादियों द्वारा चेकोस्लोवाकिया पर किये गये जघन्य सशस्त्र हस्तक्षेप ने कई पूर्वी यूरोपीय देशों और मंगोलिया को चौकन्ना कर दिया है और इस प्रकार सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद के विरुद्ध उनके संघर्ष और तेज हो गये हैं। आज, पूर्वी यूरोप एक बारूदी सुरंग की भांति है जो किसी भी दिन विस्फोट कर सकता है। सोवियत टैंकों द्वारा प्राग पर किये गये आक्रमण से सोवियत संशोधनवादी साम्राज्यवाद की शक्ति नहीं बुलन्द हुई है, बल्कि इसके विपरीत, यह सोवियत संशोधनवादी औपनिवेशिक साम्राज्य के पतन की शुरुआत का पूर्वसंकेत है।

सोवियत संशोधनवाद ''सहायता'' की आड़ में एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के देशों में जबरियां घुसपैठ करता है, लूटपाट करता है और आक्रमण करता है, तथा ऐसा करके यह स्वयं ही एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका की जनता को अपने विरोध में खड़ा कर लेता है। अब सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद के शैतानी पंजे भूमध्यसागर और हिन्द महासागर के देशों में भी फैल रहे हैं, जहां वह अपने सैनिक अड्डे कायम कर रहा है, उनके बन्दरगाहों पर विशेषाधिकार हासिल कर रहा है, तथा उनकी आन्तरिक नीतियों और वैदेशिक मामलों में नियंत्रण और दखलंदाजी भी करता जा रहा है। सोवियत संघ की मछलीमार नौकाओं के बेड़े सारी दुनिया के समुद्रों में बेरोकटोक घूम रहे हैं, मत्स्य सम्पदा को लूट और बर्बाद कर रहे हैं तथा दूसरे देशों के सामुद्रिक क्षेत्र में अतिक्रमण कर रहे हैं। एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के लोग अब सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद की इस प्रतिक्रियावादी प्रकृति से ज्यादा से ज्यादा वाकिफ होते जा रहे हैं। उन्होंने पक्के तौर पर जान लिया है कि यह सोवियत संशोधनवादी गद्दार गुट जिसने ''दुनिया की क्रान्तिकारी जनता'' के साथ विश्वासघात किया है, एक ''नवउपनिवेशवादी'' है तथा ''दुनिया की जनता का एक दूसरा सार्वभौमिक शत्रु'' है। अब सोवियत संशोधनवाद और अमेरिकी साम्राज्यवाद के आक्रमण, नियंत्रण, हस्तक्षेप और दुर्व्यवहार के शिकार देश और लोग खासतौर से इन दो नाभिकीय महाशक्तियों, अमेरिका और सोवियत संघ के विरुद्ध एक साम्राज्यवाद विरोधी और उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष छेड़ने के लिए एकबद्ध हो रहे हैं।

तीसरी बात यह है कि सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद का पागलपन भरा आक्रमण और विस्तार तथा अपने बिकाऊ मालों के लिए बाजार पाने, कच्चे मालों की आपूर्ति एवं पूंजी निवेश की गुंजाइशें पाने की इसकी उद्धत कार्रवाइयों ने साम्राज्यवादी देशों के बीच और, खासतौर से, सोवियत संशोधनवाद और अमेरिकी साम्राज्यवाद के बीच, अन्तरविरोधों को अभूतपूर्व सीमा तक तीव्र कर दिया है, ये दोनों नाभिकीय महाशक्तियां दुनिया पर अपना-अपना वर्चस्व कायम करने के लिए भीषण होड़ में लगी हुई है।

आज, प्रमुखतः ये ही दोनों नाभिकीय महाशक्तियां, अर्थात संयुक्त

राज्य अमेरिका और सोवियत संघ, दुनिया पर अपना-अपना वर्चस्व कायम कर लेने की होड़ में है। आज वे जिस सामरिक ठिकाने के लिए संघर्षरत हैं वह यूरोप में है, कारण कि यूरोप पूंजीवादी दुनिया का हृदयस्थल है। पश्चिमी देश हमेशा से यही चाहते आ रहे हैं कि सोवियत संशोधनवाद को पूर्व की ओर विस्तार करने की दिशा में धकेल दिया जाये और इस प्रकार इस महाविपदा को चीन के ऊपर डाल दिया जाये। परन्तु चीन का प्रतिरोध वर्षों से लोहे के चने चबाना साबित हो रहा है। फिलहाल सोवियत संशोधनवाद अपनी दांव-पेंचभरी आक्रमणकारी रणनीति के तहत अपना संघर्ष यूरोप में ही बढ़ा रहा है। सोवियत संशोधनवादियों ने अपनी दो तिहाई सेना और वायु सैनिक शक्ति यूराल पर्वत के पश्चिम में तैनात कर रखी है। हाल के दशक में सोवियत संशोधनवादी नौसेना का तीव्र विस्तार हुआ है। 1970 में, इसने अपना नौसैनिक पराक्रम दिखाने की भूमण्डलीय कवायद के तहत अपने 200 से अधिक युद्धक पोत तीन महासागरों और आठ समुद्र तटों की ओर रवाना किये और इस प्रकार इसने भूमध्य सागर और हिन्द महासागर की ओर अपना विस्तारवादी कदम बढ़ा लिया। आज दुनिया में अशांति का मूल कारण संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के बीच दुनिया पर अपनी दादागिरी कायम करने को लेकर चलने वाला संघर्ष ही है। बेशक इस संघर्ष में तीसरी दुनिया का प्रबल प्रतिरोध झेलना पड़ रहा है तथा जापान और पश्चिमी यूरोपीय देशों की भी नाराजगी बढ़ रही है। वस्तुतः इन दो महाशक्तियों की बढ़ती आन्तरिक और बाहरी कठिनाइयां उन्हें अधिकाधिक अपरिहार्य और असहाय स्थिति की ओर ही ठेलती जा रही हैं।

साम्राज्यवाद का मतलब ही है आक्रमण और युद्ध। सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद चीनी सीमा पर अपनी फौजें तैनात कर रहा है, और इस कोशिश में लगा हुआ है कि चीन को अपना उपनिवेश बना ले। अतः हमें निश्चय ही **माओ** त्से-तुङ की शिक्षाओं पर अमल करते हुए ''युद्ध के लिए तैयार होना होगा, प्राकृतिक आपदाओं के लिए तैयार रहना होगा, और जनता के लिए सब कुछ करना होगा'', तथा ''गहरी खाइयां खोदनी होगी, अनाज का भण्डार बढ़ाना होगा, और कभी भी आक्रामक नहीं होना होगा'' ताकि आक्रामक युद्धों के विरुद्ध तैयारियां मुकम्मल की जा सकें और साम्राज्यवादी विश्वयुद्ध, खासकर सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद के अचानक हमलों के विरुद्ध सतर्क रहा जा सके। हमें निश्चय ही दृढ़तापूर्वक, विधिवत, स्पष्ट रूप से और पूरी तरह उन सभी शत्रुओं का सफाया कर देना होगा जो हम पर हमला करने की जुर्रत करेंगे।

माओ त्से-तुङ ने कहा है कि ''विश्व की क्रान्तिकारी जनता सोवियत संशोधनवाद द्वारा अमेरिकी साम्राज्यवाद के साथ किये गये सांठगांठ में की जाने वाली तमाम बुराइयों और निंदनीय कार्रवाइयों को कभी माफ नहीं करेगी। तमाम देशों के लोग अब उठ खड़े हो रहे हैं। अमेरिकी साम्राज्यवाद और सोवियत संशोधनवाद के विरोध में एक नये युग का विहान हो रहा है।''[7] वर्चस्व की मानसिकता और शक्ति की राजनीति के विरुद्ध संघर्ष में तीसरी दुनिया अब जागरूक हो उठ खड़ी हो रही है। आज यह समकालीन अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में एक बड़ी घटना है। आज समकालीन अन्तरराष्ट्रीय स्थिति की अभिलाक्षणिकता यह है कि यह निरन्तर अस्तव्यस्त होती जा रही है। ''प्रबल वेगवाही हवाएं आने वाले तूफान का पूर्व संकेत दे रही हैं।'' वस्तुतः दुनिया के बुनियादी अन्तरविरोधों का यही समकालीन रूप है जिसका विश्लेषण लेनिन ने किया था। आज सारे देश जो साम्राज्यवाद के आक्रमण, तोड़-फोड़, हस्तक्षेप, नियंत्रण और दुर्व्यवहार के शिकार बन रहे हैं, अधिकाधिक एकबद्ध होते जा रहे हैं, एक व्यापक संयुक्त मोर्चा बना रहे हैं तथा साम्राज्यवाद और नये एवं पुराने उपनिवेशवाद के विरुद्ध, खासतौर से दो महाशक्तियों अमेरिका और सोवियत संघ की वर्चस्वशाली मानसिकता के विरुद्ध अपना संघर्ष तेज करते जा रहे हैं। ये अप्रतिरोध्य ऐतिहासिक ज्वार हैं जो अमेरिका और सोवियत संघ दोनों को बहा ले जायेंगे।

जापान विरोधी युद्ध की विजय की पूर्वबेला में, माओ ने भविष्यवाणी की थी, ''दुनिया आगे बढ़ेगी और कभी पीछे नहीं जायेगी। लेकिन यह भी स्वाभाविक है कि सम्भावित तौर पर, अल्पकालिक और यहां तक कि गम्भीर ऐतिहासिक संकटों के भंवर में फंस जाने की भी नौबत आ सकती है, जिसके लिए हमें तैयार रहना होगा। अभी भी कई देशों में प्रतिक्रियावादी प्रभाव बहुत प्रबल हैं और वे देश अभी भी अपनी जनता और दूसरे देशों की जनता द्वारा एकता, प्रगति और मुक्ति हासिल कर लेने की सम्भावना को स्वीकार करने में हिचकिचा रहे हैं। यदि कोई इन बातों को नजरअंदाज कर दे, तो वह निश्चय ही गम्भीर राजनीतिक गलती करेगा। बहरहाल, इतिहास की सामान्य दिशा निर्धारित हो चुकी है और उसे बदला नहीं जा सकता।''[8] सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद की मौजूदगी इतिहास का एक अल्पकालिक विपथगमन भर है। लेकिन, पूंजीवादी साम्राज्यवाद की भांति ही यह सभी प्रकार के अन्तरविरोधों से ग्रस्त है : एक तरफ सोवियत संशोधनवादी नौकरशाहाना एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग और दूसरी तरफ सोवियत संघ के सर्वहारा और समूची मेहनतकश आबादी के बीच का अन्तरविरोध, सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद और उपनिवेशों एवं समूची दुनिया की जनता के बीच का अन्तरविरोध, और सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद और पूंजीवादी साम्राज्यवाद, खासतौर से अमेरिकी साम्राज्यवाद के बीच का अन्तरविरोध। ये सारे के सारे अन्तरविरोध अधिकाधिक तीखे होते जा रहे हैं। इन्हीं अन्तरविरोधों की मौजूदगी और विकसित होते जाने के कारण, सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद सोवियत संघ और दुनिया की जनता द्वारा निश्चित तौर पर इतिहास के अजायबघर में फेंक दिया जायेगा। लेनिन ने जोर देकर कहा था, ''साम्राज्यवाद समाजवादी क्रान्ति की पूर्वबेला है।''[9] सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद भी एक दूसरी समाजवादी अक्टूबर क्रान्ति की पूर्वबेला ही है। **माओ** ने कहा था; ''सोवियत संघ एक समाजवादी देश था और सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी लेनिन द्वारा खड़ी की गयी थी। भले ही, आज पार्टी के नेतृत्व और सोवियत संघ की सरकार को संशोधनवादियों ने हड़प लिया है, फिर भी मैं अपने कामरेडों को सलाह दूंगा कि वे यह दृढ़तापूर्वक विश्वास करें कि व्यापक सोवियत जनता, पार्टी सदस्य और कैडर अच्छे लोग हैं और क्रान्ति चाहते हैं। संशोधनवादी शासन लम्बे समय तक नहीं टिका रह सकता।''[10] लेनिनवाद के गौरवशाली झण्डे तले और दुनिया भर की जनता के समर्थन से सोवियत जनता, जिसकी एक गौरवशाली क्रान्तिकारी परम्परा रही है, अन्ततः इस सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद को दफना कर ही दम लेगी। उसकी सफलता एक बार फिर सर्वहारा अधिनायकत्व, समाजवाद, और मार्क्सवाद-लेनिनवाद के तेज से सोवियत संघ की धरती को जगमगा देगी।

सत्ताधारी वर्ग को कम्युनिस्ट क्रान्ति से कांपने दो। सर्वहारा के पास अपनी बेड़ियां खोने के अलावा कुछ नहीं है। लेकिन जीतने के लिए सारी दुनिया है।

सारी दुनिया के मेहनतकशो, एक हो!''

प्रमुख अध्ययन सामग्री

लेनिन, ''तीसरे इण्टरनेशनल के कार्यभार के बारे में'', लेनिन, कम्प्लीट वर्क्स, खण्ड 29

माओ, '' अमेरिकी पत्रकार अन्ना लुई स्ट्रांग से बातचीत''

माओ, ''लेबर पार्टी आफ अल्बानिया की पांचवीं कांग्रेस को बधाई तार,'' 25 अक्टूबर, 1916

समीक्षात्मक समस्याएं

1. साम्राज्यवाद की बुनियादी आर्थिक अभिलाक्षणिकताओं से सोवियत संशोधनवादी सामाजिक साम्राज्यवाद की प्रकृति को कैसे पहचाना जा सकता है?

2. सोवियत संघ में ब्रेझनेव के गद्दार गुट का शासन क्यों लम्बा नहीं हो सकता?

टिप्पणियां

1. साम्राज्यवाद-पूंजीवाद की चरम अवस्था, लेनिन चुनी हुई कृतियां, खण्ड 2

2. ''रेजलूशन्स आन द प्रेजेण्ट सिचुएशन। सेवेन्थ नेशनल कांग्रेसनल कान्फ्रेंस [एप्रिल कांग्रेसनल कांफ्रेंस आफ द सोशल डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी (बोल्शेविक] आफ रशिया।'' लेनिन कम्प्लीट वर्क्स, खण्ड 24, पृ. 277

3. मार्क्स, क्रिटीक आफ गोथा प्रोग्राम, मार्क्स-एंगेल्स सेलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 3

4. ''आन द नेशनल सुपीरियारिटी काम्प्लेक्स आफ द ग्रेट रूशियन पीपुल'', लेनिन सेलेक्टेड वर्क्स खण्ड 2,

5. 11 मई, 1964 को अध्यक्ष माओ का भाषण, पीपुल्स डेली 22 अप्रैल, 1970 में उद्धृत।

6. ''वार ऐण्ड रशियाज सोसल डेमोक्रेटिक पार्टी'' लेनिन कम्प्लीट वर्क्स, खण्ड 21, पृ. 13

7. पीपुल्स डेली 28 अप्रैल 1969 से उद्धृत

8. ''आन कोलीशन गर्वमेण्ट'', माओ त्से-तुङ -- सेलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 3

9. साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था की भूमिका।

10.पीपुल्स डेली 11 जून, 1967 से उद्धृत

11.कम्युनिस्ट घोषणापत्र, मार्क्स-एंगेल्स सेलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 1,

(चीन में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान तैयार की गयी पुस्तक **'फंडामेंटल्स ऑफ पोलिटिकल इकानमी'** (*शंघाई टेक्स्ट बुक* नाम से प्रसिद्ध) का हिन्दी रूपान्तर। *जार्ज सी. वाङ* द्वारा सम्पादित तथा M.E. Sharp Inc. North Broadway, White Plains, New York 10603 से प्रकाशित अंग्रेजी संस्करण से हिन्दी अनुवाद : **विश्वनाथ मिश्र**)

●

दायित्वबोध यहां से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश • संस्कृति कुटीर, कल्याणपुर, गोरखपुर जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर • विजय इन्फार्मेशन सेंटर, कचहरी बस स्टैण्ड, गोरखपुर • राहुल फाउण्डेशन, 3\274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ • जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के निकट, हजरतगंज, लखनऊ (शाम पांच से साढ़े सात) • सत्यम वर्मा, यूनीवार्ता, काजमी चैम्बर्स, 5, पार्क रोड, लखनऊ • ओ. पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ • इण्डियन बुक डिपो, अमीनाबाद, लखनऊ • शहीद पुस्तकालय, द्वारा, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ • विश्वनाथ मिश्र, चेतना कार्यालय, बड़हलगंज, गोरखपुर • प्रो. प्यारे लाल, 139, फूलबाग कालोनी, पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय, पंतनगर • श्री. ए.के. त्रिपाठी, 21, विश्वविद्यालय मार्ग, इलाहाबाद • श्री राम धीरज, स्वराज्य स्टेशनर्स, प्रयाग चुंगी, मोती लाल नेहरू मार्ग, इलाहाबाद • अमृत लाल पाण्डेय, निकट प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, बसखारी, जि. अम्बेडकरनगर • करेंट बुक डिपो, 18\53, माल रोड, (फूलबाग के सामने), कानपुर • प्रतिभा प्रकाशन, (पेप्सी होटल के नीचे), स्टेशन रोड, बलिया • राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र • नेशनल न्यूज एजेन्सी, पल्टन बाजार, देहरादून • सुनील पंत, पंत पान भण्डार, गाड़ी पड़ाव, मल्ली ताल, नैनीताल

बिहार • चन्द्रकेतु नारायण शर्मा, एडवोकेट, सांची पट्टी, बागमली गाद्दी, स्थान-पोस्ट - हाजीपुर जिला-वैशाली • समकालीन प्रकाशन (प्रा.) लि., पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, पटना • राजकमल प्रकाशन, साइंस कालेज के सामने, अशोक राजपथ, पटना • पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना • अविनाश कुमार सिन्हा/रणजीत कुमार श्रीवास्तव, द्वारा, शैलेन्द्र श्रीवास्तव, बरियारी चक, पो. मेंहसी, पूर्वी चम्पारण • मैत्रेयी साहित्य संगम, (सर्वे आफिस के सामने), लाल बाग के.डी.एस., दरभंगा • विजय कुमार आर्य, सचिव - 'मजदूर संगठन समिति', गुरारू चीनी मिल्स, गुरारू, पो.- गुरारू, जि.-गया • वी. प्रशान्त, कन्हौली (बी.एम. पी. 6 से पूरब), मुजफ्फरपुर • दीपशिखा पत्रिका मण्डप, द्वारा श्री शिवदास पाण्डेय, पानी टंकी चौकी, क्लब रोड, मुजफ्फरपुर • रामपुकार सिंह, ग्रा.-पो.-भदई, जि.-मुजफ्फरपुर विद्यानन्द सिंह वार्ड न. 4, सुपौल • श्री भुवन वेणु, 'प्रतीक्षा', मधुबनी-चूनापुर रोड, पूर्णियां

दिल्ली • एतकाद अहमद, डिपार्टमेण्ट ऑफ फाउण्डेशन आफ एजुकेशन, जामिया मिल्लिया इस्लामिया • सेंट्रल न्यूज एजेन्सी, 29\30, कनाट सर्कस • बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, सफदर हाशमी मार्ग, मण्डी हाउस • गीता बुक सेण्टर, शापिंग काम्प्लेक्स, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय • जवाहर बुक सेण्टर, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय • बोधन लाल एण्ड कम्पनी, क्लॉक टॉवर के पास, शिवाजी स्टेडियम • पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, मरीना होटल की इमारत, कनाट प्लेस

महाराष्ट्र • परिदृश्य प्रकाशन, 6, दादी संतुक लेन, इंजीनियर हाउस, धोबी तालाब, मुम्बई • सतीश कालसेकर, पीपुल्स बुक हाउस, मेहर हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, मुम्बई • शैलेश वाकड़े, विजयालक्ष्मी नगर, टीचर्स कालोनी, बल्लारपुर, चन्द्रपुर • सूर्यदेव उपाध्याय, लेनिन लाइब्रेरी, उल्हास नगर, जि.-ठाणे

गुजरात • डा. हरियश राय, ए-205, सुजल अपार्टमेण्ट, सेटेलाइट रोड, रामदेव नगर, अहमदाबाद

हिमाचल प्रदेश • एस.आर. हरनोट, हिमांचल पर्यटन विकास निगम, रिट्ज एनेक्सी, शिमला

हरियाणा • नरभिंदर सिंह, द्वारा, डा. सुखदेव हुंदल, ग्रा.-पो. - संतनगर, जि.-सिरसा • राजीव रंजन, द्वारा पाश पुस्तकालय, पुलिस लाइन, करनाल • सुरेश जांगिड़, अक्षर धाम, सुकीर्ति प्रिंटर्स, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल

राजस्थान • हंसा प्रकाशन, 316, खूंटेटों का रास्ता, किशन पोल बाजार, जयपुर • संजय श्रीवास्तव, 221, उत्तरी सुन्दरवास, गंगा फ्लोर मिल उदयपुर

उड़ीसा • गाला बुक्स, 61-62 बस स्टैण्ड, अस्का, जिला-गंजम

असम • शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, तिनसुकिया • दिनकर कुमार, चाणक्य पथ, जी एस रोड, दिसपुर, गुवाहाटी

पं. बंगाल • श्याम अविनाश, स., 'सरोकार', साहेब बांध रोड, पुरुलिया • राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मन्दिर प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग • बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता • जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो.आ. - केरन, जि. - जलपाईगुड़ी

आन्ध्र प्रदेश • गोविन्द अक्षय, 'सारस्वत सदन', 13\6\411\2, रामसिंहपुरा, कारवान, हैदराबाद

मध्यप्रदेश • जयप्रकाश जायसवाल, 'पितृछाया,' अमृत सागर कालोनी, एम.आई.जी. 96-97 रतलाम • चिंचोलकर बुक हाउस, बस स्टैण्ड, जगदलपुर, बस्तर

नेपाल • पुस्तक पत्र-पत्रिका बिक्री वितरण केन्द्र, डिल्ली बाजार, उकालो, काठमाण्डू • जलजला पुस्तक सदन, धमबोजी चौक, नेपालगंज, बांके • विशाल पुस्तक सदन, अस्पताल लाइन, बुटवल • विशाल पुस्तक सदन, विजुवार बाजार प्यूठान, राप्ती अंचल

विविधा

भाषा की साम्प्रदायिकता और आतंकवाद

शीर्षक चौंकाने वाला लग सकता है। भला यह भी कोई बात हुई? भाषा को साम्प्रदायिक और आतंकवादी कह दिया? जी हां, जब मैं, खासतौर से, विज्ञान और तकनोलाजी से लेकर साहित्य और अन्य सामाजिक विज्ञानों तक में हिन्दी के तमाम शब्दों का प्रयोग देखता हूं तो कपार पीटने का मन करता है अपना ही नहीं, उनका भी जो ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। यहां कुछेक उदाहरणों से बात को स्पष्ट करना चाहूंगा।

हम आम बोलचाल में 'किताब' कहते हैं, 'स्कूल', 'कालेज', 'यूनिवर्सिटी' कहते हैं। ये शब्द हमें सरल, सहज और बोधगम्य भी लगते हैं। साथ ही, इनके प्रयोग में न हमें कहीं कोई झिझक महसूस होती है, न कोई अश्लीलता। पर जब हम इन्हें किसी लेख या किताब के रूप में लिखते हैं तो 'किताब' की जगह 'पुस्तक' लिखते हैं, 'स्कूल' की जगह 'विद्यालय' 'कालेज' की जगह 'महाविद्यालय' और 'यूनिवर्सिटी' की जगह 'विश्वविद्यालय' लिखते हैं। क्यों? आखिर ऐसा क्यों होता है कि जिन शब्दों को हम बोलचाल में सहज ढंग से इस्तेमाल करते हैं उन्हें ही अकादमिक प्रयोगों से कुजात काढ़ देते हैं। क्या यह अति शुद्धतावादी रवैया एक खास अप्रचलित भाषा -- स्पष्ट कहूं तो **संस्कृत भाषा -- के प्रति एक साम्प्रदायिकता** जैसी संकीर्णता का सूचक नहीं है?

यही बात विज्ञान और तकनोलाजी की पारिभाषिक शब्दावलियों के गढ़ने और इस्तेमाल करने में भी देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए, कृषि-विज्ञान के कुछ विषय हैं '**कुक्कुट पालन**', '**मौन पालन**' और '**मत्स्य पालन**'। जबकि बोलचाल में हम इन्हें क्रमशः **मुर्गी पालन**, **मधुमक्खी पालन** और **मछली पालन** ही बोलते हैं और ये काफी सहज और बोधगम्य भी हैं। इसी तरह कृषि का एक और विषय है **प्रक्षेत्र प्रबन्ध**। क्या इसे **खेत प्रबन्ध** नहीं कहा जा सकता? 'खेत' या 'फार्म' शब्द तो प्रचलित हैं, पर 'प्रक्षेत्र' कहां बोला जाता है? प्रसंगवश, मैं अपनी बात भी कह दूं। आज से करीब पन्द्रह वर्ष पहले मैंने एक किताब लिखी -- '**भूमि और जल संरक्षण के सिद्धान्त**' -- मैं इसी विषय का अध्यापक हूं। इस पुस्तक की भाषा को मैंने काफी परिष्कृत-संस्कृतनिष्ठ रखा और अंग्रेजी के तकनीकी शब्दों के लिए जो हिन्दी शब्द प्रयोग किये उन्हें भारत सरकार द्वारा प्रकाशित पारिभाषिक शब्दावली और अन्य मानक शब्दकोशों से लिया। और बड़े गर्व के साथ दावा किया कि 'इस पुस्तक में भाषा की दरिद्रता नहीं मिलेगी'। मुझे कहने में यह संकोच नहीं कि जहां पुस्तक की विषय सामग्री की गुणवत्ता को लेकर छात्रों और विषयाध्यापकों ने खूब सराहना की, वहीं उसकी भाषा की गरिष्ठता को लेकर खूब शिकायतें भी की। अब भाषा के पण्डिताऊपन से मोहभंग होने पर मुझे अपने उस दावे पर ग्लानि और शर्म दोनों महसूस होती है। इस विषय से सम्बन्धित कुछ कतिपय हिन्दी प्रयोगों की बानगी देना चाहूंगा। भूमि में पानी सोखने या प्रवेश करने के लिए अंग्रेजी शब्द 'इन्फिल्ट्रेशन' है। इसकी पारिभाषिक शब्दकोशों में हिन्दी मिलेगी -- अन्तःस्पंदन, निस्पंदन, अंतःस्राव, अन्तःस्रवण, अन्तःसरण आदि। मैंने 'अन्तर्सरण' शब्द का प्रयोग किया था। पर क्या ये सारे के सारे शब्द कहीं बोले भी जाते हैं? क्या भूमि का पानी सोखना या भूमि में पानी का प्रवेश गलत या अश्लील शब्दावलियां हैं? नहीं। लेकिन वही, भाषा की संस्कृतनिष्ठ साम्प्रदायिकता! इसीलिए मैं अब अपनी पुस्तक की भाषा को ठीक करने में लगा हूं। खैर वह एक अलग बात है।

हां, तो मैं कहूं कि हिन्दी में आजकल तमाम ऐसे शब्द *लिखे* जा रहे हैं, जो बोले तो कहीं नहीं जाते, पर पढ़ने वाले को आतंकित जरूर करते हैं। चूंकि ये शब्द एक अप्रचलित भाषा-संस्कृत से गढ़े जाते हैं, इसलिए मैं इन्हें साम्प्रदायिक भी कहता हूं। आखिर संस्कृत के प्रति यह मोह क्यों? क्या हिन्दी संस्कृत से पैदा हुई है? नहीं तो। मिजाज तो दोनों का एक दूसरे से एकदम भिन्न है। मिसाल के तौर पर -- हिन्दी में कहेंगे : '*सभी सुखी हों*' जबकि संस्कृत में होगा -- '*सर्वे सुखिनो भवन्ति*'। अब इसे पालि में कहें तो '*सब्बे सुखी होन्तु*' होगा। कहने की जरूरत नहीं कि हिन्दी पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के ज्यादा करीब है -- बनिस्बत संस्कृत के। वैसे भी पाणिनीय व्याकरण ने संस्कृत भाषा की जो जकड़बंदी की है उससे कोई नयी भाषा जन्म ले भी नहीं सकती। और वह कभी भी आम जबान नहीं रही। इस प्रकार, हिन्दी का संस्कृतवाद एक प्रकार का साम्प्रदायिक भाषावाद है जो अपने प्रभाव में आतंकवादी है।

लगभग ऐसी ही बात उर्दू के बारे में है जो फारसी लिपि में लिखी जाती है, जबकि हिन्दी देवनागरीलिपि में। बोलचाल में दोनों एक ही भाषा की शैलियां लगती हैं। लेकिन जब इसके बोलने वालों पर भाषा की साम्प्रदायिकता और आतंकवाद का जुनून सवार होता है तो वे इसे अरबी और फारसी की ओर खींचने लगते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि उर्दू का मिजाज हिन्दी से तो बिल्कुल मिलता-जुलता है, पर अरबी और फारसी से कतई नहीं। यहां तक कि उर्दू की वर्णमाला भी अरबी से बड़ी है, लेकिन इसके बावजूद इसे अरबी के साथ ज्यादा जोड़ने की कोशिश की जाती है।

वस्तुतः भाषा जीवन की गतिविधियों से पैदा होती है और उसी को ढोने वाली या वाहक बनती है। कोई भाषा तबतक ही जिन्दा रह सकती है जबतक वह जीवन से जुड़ी रहती है, और तबतक ही वह जीवन को ढोने में समर्थ भी रहती है। पर जब भाषा जीवन से कट जाती है और अकादमिक कवायद बन जाती है तो मुर्दा बन जाती है और जीवन पर भार भी। तकनीकी शब्दावली के नाम पर भाषा व्यूरो की गंजदंती मीनारों के वातानुकूलित कक्षों में बैठे जो तथाकथित भाषा विशेषज्ञ और बुद्धिजीवी अकादमिक कवायदें कर रहे हैं, वे सचमुच जीवन -- यानी जनजीवन से कटे हुए लोग ही हैं। वे स्वयं जीवन-कर्म में लगी जनता के ऊपर भार ही हैं -- क्योंकि स्वयं मुर्दा हैं। और ऐसे मुर्दों की खोपड़ियों से जिन्दा शब्द नहीं निकल सकते। मुर्दों की जगह कब्रिस्तान होती है। ऐसे भाषाविशेषज्ञों और बुद्धिजीवियों की कवायदें भी मुर्दा बन चुकी

भाषाओं के कब्रिस्तान में ही होती है। यह प्रेतों की कवायदें हैं और प्रेत जिन्दा आदमी को सताता है। सो इनके द्वारा गढ़े गये शब्द भी काफी सताते हैं।

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि लेखन के तौर पर हिन्दी भाषा का जो प्रयोग भारतेन्दु ने शुरू किया -- जो प्रेमचंद और रेणु की कलम से बुलन्दी पर पहुंची -- वही हिन्दी का सबसे सरल, सहज और बोधगम्य स्वरूप था। परन्तु इस बीच हिन्दी की जो अकादमिक कवायदें की गयी हैं उसके साम्प्रदायिक आतंकवाद ने भारतेन्दु, प्रेमचंद और रेणु से होकर गुज़रने वाली हिन्दी की असली धारा त्रिवेणी में सरस्वती की तरह विलुप्त सी हो गयी है। कौन खोजेगा हिन्दी की इस सरस्वती को? क्या गजदंती मीनारों में बैठे वे मृर्दा भाषाविद और बुद्धिजीवी? या मोटी-मोटी तनख्वाहें लेने वाले हिन्दी के ठेकेदार बने बैठे वे प्रोफेसर और अकादमिशियन? जिनका अब ज्यादा समय स्टार टीवी पर क्रिकेट मैच देखने और शेयरों के भाव-ताव समझने में लग रहा है? खैर इसमें सिर्फ ये ही नहीं हैं -- और भी हैं, लेकिन इसी नाते उनका अपराध कुछ कम नहीं हो जाता।

प्रसंगवश, भाषा की साम्प्रदायिकता और आतंकवाद को लेकर एक और विषय याद आया। और सच कहूं तो भाषा की साम्प्रदायिकता और आतंकवाद का सिरमौर है यह विषय। यह विषय है मनोविज्ञान। मेरे कुछेक मित्र इस विषय के विशेषज्ञ हैं। उनके मुंह से जब मैं मनोविज्ञान के कुछ पारिभाषित शब्दों को सुनता हूं तो मानो जूड़ी-ताप महसूस करने लगता हूं। कुछ बानगी पेश करूं। 'सीखना' शब्द के लिए अंग्रेजी में 'लर्निंग' शब्द है। पर मनोविज्ञान में 'अधिगम'। कहां बोला जाता है यह शब्द? और कौन समझेगा इसके अर्थ को? ऐसे ही अंग्रेजी के 'टास्क' शब्द के लिए आम बोलचाल में 'कार्य' और 'कार्यभार' शब्द हैं। पर मनोविज्ञान में -- 'संकृत्य'। है न भाषा की साम्प्रदायिकता और आतंकवाद। मेरे एक मनोवैज्ञानिक शिक्षक मित्र ने स्वीकार्य किया कि कई छात्र तो मनोविज्ञान की हिन्दी भाषा से डर कर ही यह विषय पढ़ना छोड़ देते हैं। जब मैंने उनसे भाषा को सरल बनाने का आग्रह किया तो, वे बोल पड़े -- अरे भाई, इसी से तो हम लोग छात्रों पर रुतबा जमाते हैं। तो यह है मनोविज्ञान की भाषा की असलियत। इसे कोई कैसे सीख सकता है। इसका तो सिर्फ 'अधिगम' किया जा सकता है।

कहने का मतलब यह कि ऐसे गरिष्ठ शब्द विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम कैसे बन सकते हैं जो विचारों के वाहक बनने के बजाय स्वयं ही विचारों पर बोझ बन जायें? बेशक विज्ञान और तकनोलाजी में इस्तेमाल किये जाने वाले अंग्रेजी के कई शब्द हैं जिनके समानार्थी शब्द हिन्दी में नहीं मिलते। यह कोई हिन्दी भाषा की कमजोरी नहीं है। यदि इसे एक '**कमजोरी**' ही मानें तो यह दुनिया की सभी प्रचलित भाषाओं की कमजोरी है। इसका कारण यह है कि शब्द जीवन की गतिविधियों के दौरान पैदा होते हैं। यदि विज्ञान और तकनोलाजी की कोई गतिविधि हिन्दी समाज में नहीं पैदा हुई, तो उसके बोधक शब्द भी नहीं पैदा होंगे। जैसे रेडियो, साइकिल, जीप, इलेक्ट्रान आदि। इसी तरह दही, पकायी हुई दाल, चिउड़ा, पान का बीड़ा, चोली, साड़ी, धोती आदि शब्दों के समानार्थी शब्द भी अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं में नहीं मिलते -- कारण कि ये चीजें विदेशी भाषाओं वाले समाजों की गतिविधियों में रही ही नहीं है। कहने का मतलब यह है कि यदि हमें किसी दूसरे भाषा-भाषी समाज में विकसित शब्द की जरूरत है, और यदि उसके मिलता-जुलता शब्द हमारी भाषा में नहीं है तो उसे वैसे का वैसे ही ग्रहण कर लेना चाहिए। वैसे इस मायने में आम जनता की सृजनशीलता कमाल की होती है कि जो विदेशी शब्द उनके जीवन का सरोकार बन जाते हैं, उन्हें वह अपने ढंग से ढाल भी लेती है -- जैसे 'लैन्टर्न', से 'लालटेन', 'शॉक एब्जार्बर' से 'साकर', 'गर्डर' से 'गाटर', 'रबर साल्यूशन', से 'रबड़ सूलेशन' 'मडगार्ड' से 'मोटरगाट' आदि। वैज्ञानिक क्षेत्र में भी कुछ इस तरह के सफल प्रयोग हुए हैं -- जैसे 'फिल्टेशन' का 'फिल्टरन', 'रेडियोएक्टिविटी' का 'रेडियोएक्टिवता' आदि।

अन्त में, निचोड़ बात यह है कि हमें पारिभाषिक ही नहीं सामान्य शब्दों को भी लेखन में इस्तेमाल करते समय यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि वे जीवन से मेल खायें -- चाहे प्रचलित समानार्थी शब्दों के रूप में, या प्रचलित विदेशी शब्दों के रूप में। तभी भाषा की साम्प्रदायिकता और आतंकवाद से मुक्ति मिल सकती है।

● **विश्वनाथ मिश्र**

मजदूरों की मुक्ति के लिए चाहिए

क्रान्ति

क्रान्ति के लिए चाहिए

एक क्रान्तिकारी पार्टी

क्रान्तिकारी पार्टी के लिए चाहिए

एक क्रान्तिकारी अखबार

पढ़िए, पढ़ाइए, प्रचारित कीजिए

मज़दूरों का मासिक इंकलाबी बुलेटिन

बिगुल

मज़दूर वर्ग का क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता अखबार ही नहीं एक क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आंदोलनकर्ता भी

सम्पादक : डा. दूधनाथ,

सम्पादकीय कार्यालय : द्वारा ओ पी सिन्हा 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ - 226007

एक प्रति : - दो रुपये वार्षिक चौबीस रुपये

जनचेतना... आपके बीच क्यों....

यदि आपको
महज मनोरंजन चाहिए,
महज नशे की एक खुराक,
दिल को बहलाने के लिए एक ख्याल
तो नहीं है ऐसी किताबें
हमारे पास।

हम ऐसी किताबें लेकर आये हैं
जो आपकी मोह निद्रा
झकझोरकर तोड़ दें,
जो आज के हालात के बारे में
आपको सोचने के लिए
मजबूर कर दें।

हम किताबें नहीं
लड़ने की जिद
और हालात की बेहतरी की उम्मीदें
लेकर आये हैं,
हम आने वाले कल के
सपने लेकर आये हैं।
हम लेकर आये हैं
एक सार्थक, स्वाभिमानी, मुक्त जीवन की
तड़प।

किताबें नहीं
हम असली इंसान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं।

घटिया साहित्य के घटाटोप और अपसंस्कृति के अंधेरे में
उत्कृष्ट, स्तरीय, जनपक्षधर, क्रान्तिकारी और क्लासिकीय साहित्य को
जन–जन तक पहुंचाना हमारा मिशन है!

जनचेतना

प्रगतिशील साहित्य का उत्कृष्ट प्रतिष्ठान

जाफरा बाजार, गोरखपुर - 273001 (मंगलवार अवकाश)
हजरतगंज (काफी हाउस के निकट) लखनऊ (प्रतिदिन शाम 5-7.30 बजे तक रविवार अवकाश)

मजदूर : महत्तम समापवर्तक

गणेश शंकर विद्यार्थी

[गणेश शंकर विद्यार्थी के शहादत दिवस (25 मार्च) के अवसर पर हम 13 अक्टूबर 1919 को '**प्रताप**' में प्रकाशित उनका यह लेख यहां प्रकाशित कर रहे हैं। इस लेख में विद्यार्थी जी ने पूंजी और शोषण पर आधारित व्यवस्था की चीर-फाड़ की है और मजदूर वर्ग के संघर्षों की तर्कसंगतता स्थापित की है। जिसके चलते यह लेख आज भी प्रासंगिक है।]

सामाजिक जीवन की कठिनाइयों ने इस समय संसार भर के मजदूरों के हृदयों में अपरिमित असन्तोष भर दिया है। यूरोप इसी कारण से सामाजिक क्रान्ति का केन्द्र बन रहा है। जीवन सम्बन्धी सुविधाओं की असमता ने गरीबों को आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में ला पटका है और जब तक वे अपने उद्योगों में पूर्ण सफल नहीं हो जाते, संसार की शान्ति एक कोरी कल्पना है। सोलहवीं शताब्दी की यूरोपीय औद्योगिक क्रान्ति से आज तक यह समस्या हल नहीं हो पाई है। बहुसंख्यक जनता गरीब होती जा रही है, उसका सामाजिक जीवन कठिन होता जा रहा है, नैतिक विकास रुका हुआ है और उधर पूंजी लगाकर इन गरीबों के परिश्रम से लाभ उठाने वाले मालामाल हो रहे हैं। उनके यहां, एक खिदमतदार के स्थान पर चार-चार खिदमतदार, नौकर हैं। बड़ी निर्दयता से वे गरीबों की कमाई को विलासिता के भागों में खर्च करते हैं, पर तब भी उनकी सम्पत्ति पारस बनी हुई है। जीवन की इस असहय विषमता ने ही सामाजिक क्रान्ति को जन्म दिया है, और आज दिन इस सामाजिक क्रान्ति ने सारे संसार में अपने पैर पसार दिये हैं। इसके प्रभाव से मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को मिलाकर संसार में 95 फीसदी से अधिक सामाजिक क्रान्तिकारियों ने जन्म लिया है। आर्थिक क्षेत्र में दीन-हीन होने और सामाजिक जीवन की विषमता को अधिक सहन न कर सकने के कारण ही मजदूरों ने राजनैतिक उपायों का अवलंबन लिया है। सत्रहवीं शताब्दी में सामाजिक क्रान्ति ने शासन व्यवस्था के द्वार पर भी दस्तक दिया गरीब मजदूरों ने अपनी आर्थिक असुविधा और सामाजिक विषमता से मुक्ति पाने के लिए, देश के शासन में अपने प्रतिनिधियों का होना जरूरी समझा। बात भी ठीक है। सरकारों की नकेल धनी लोगों के हाथों में थी, इसीलिए मजदूरों की हड़तालों और क्रान्तियों को दाब लेने के लिए वे सरकारी पशु-बल से मदद लेते थे। इस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में पहले पूंजी वाले गये, मजदूर नहीं। सामाजिक क्रान्ति ने 'साम्यवाद' को जन्म दिया था अब राजनीतिक भावों से लोकसत्तात्मक शासन को विकास दिया।

अकेली गरीबी पर विजय पाने के लिए मजदूरों को कई क्षेत्रों में लड़ना पड़ रहा है। यूरोपीय मजदूरों ने इस भीषण संग्राम की मोर्चाबन्दी बड़ी दृढ़ता के साथ की है। प्रत्येक समूह की जुदा-जुदा प्रतिनिधि सभाएं हैं। रेलवे कर्मचारियों की सभाएं, मिलों में काम करने वालों की सभाएं, खानों में मजदूरों की सभाएं, पुलिस के कांस्टेबिलों की सभाएं, रेलवे क्लर्कों की सभाएं, गार्डों की सभाएं, गाड़ी हांकने वालों की सभाएं, आदि-आदि इनके अनेक नाम हैं। इन सभाओं का संचालन चन्दे और फण्डों की सहायता से होता है। लाखों और करोड़ों रुपये इन सभाओं के रिजर्व फण्ड में रहते हैं। सिर्फ इसलिए कि अगर हड़ताल करनी पड़े तो, उतनी अवधि तक मजदूरों को खाने-पहनने के लिए सहायता दी जा सके। इंग्लैण्ड में इस किलाबंदी की दृढ़ता सबसे चढ़ी-बढ़ी है। इसीलिए अंग्रेजी मजदूरों से देश की पूंजी वाले और ब्रिटिश सरकार डरती रहती है। पिछले दिनों में जब खान और फैक्टरियों में काम करने वालों ने भीषण हड़ताल कर दी थी, तब भी ब्रिटिश सरकार को नीचा देखना पड़ा था। अपनी जीत के लिए ही विलायती मजदूरों ने एक नया संगठन किया है। इसका नाम है 'त्रिगुट' अर्थात् (Triple Allies) इस त्रिगुट में खाने वाले, फैक्टरियों में काम करने वाले तथा रेलवे वाले कर्मचारी यानी श्रमजीवी शामिल हैं। समवायवाद (Syndicalism) की यह एक दृढ़ सीढ़ी है। इस सिद्धान्त का एक उपदेश यह भी है कि यदि एक समूह हड़ताल कर दे तो उसकी सफलता के लिए अन्य समूह वाले भी हड़ताल कर दें; समवायवादिनी हड़तालें एक प्रकार की शांत क्रान्तियां हैं। उनसे देश के कारोबार — रेल, जहाज, कल-कारखाने, गाड़ी, घोड़ें, मोटर, ट्राम, तार, डाक आदि बंद हो जाते है। बहुतेरे स्थानों पर लोग खाद्य-सामग्री न पा सकने के कारण भूखों मरने लगते हैं और सर्वसाधारण की इस तकलीफ और असुविधा का दोष सरकार के मत्थे मढ़ा जाता है। बहुधा इस दुर्व्यवस्था में पड़कर यूरोप की अनेक सरकारों को नीचा देखना पड़ा है। उनकी निरंकुशता और सम्पत्तिवाद को ठेस लगी है, परन्तु साथ ही देश के शासन में लोकसत्ता का विकास हुआ है।

विगत सप्ताह ही की बात है। इंग्लैण्ड के रेलवे श्रमजीवियों ने वेतन के झगड़े के कारण भीषण हड़ताल कर दी थी। देश भर की रेलें एक साथ खड़ी रह गईं, लाखों यात्री जहां के तहां पड़े रह गये। लंदन में खाद्य सामग्री का अकाल सा पड़ गया, बाहर से

आने वाली दूध, अनाज आदि सामग्री के टोटे से बड़ा कष्ट सहना पड़ा। सरकार को रेलवे यात्रियों को मोटरों पर चढ़ा कर यथास्थान भेजना पड़ा, हवाई जहाजों पर दूध और मक्खन लाद कर बाहर से मंगाना पड़ा। हाइडपार्क में मोटरों का स्टेशन और खाद्य-सामग्री का बाजार खोलना पड़ा। तिस पर भी पोस्ट-मास्टर जनरल ने 8 दिन तक पार्सलें नहीं लीं। यदि कहीं 'ट्रिगुट' वाले भी इस हड़ताल में शामिल हो जाते तो, देश भर में हाहाकार मच जाता, लाखों आदमी भूखों मरने लगते। मि. लाइड जार्ज पहले शान में आकर, 'रेलवे मेंस यूनियन' की बात तक नहीं सुनना चाहते थे, नीचे झुके। अंत में उन्हें वचन देना पड़ा कि रेलवे श्रमजीवियों को प्रति सप्ताह कम से कम 51 शिलिंग (एक शिलिंग = बारह आने) यानी 6 रु. आने नित्य मिला करेंगे। इस प्रकार रेलवे श्रमजीवियों ने इंग्लैण्ड की 'लाइन जार्यिजन' सरकार पर विजय प्राप्त की।

परन्तु बात इतनी ही नहीं है। यूरोपीय महायुद्ध तथा रूसी राज्य क्रान्ति ने इस सामाजिक आन्दोलन का नये सिरे से संशोधन किया है। लोग उसे 'बोल्शेविज्म' का नाम देकर कहकहा लगाते हैं। स्वयं मि. लायड जार्ज ने उस दिन कहा था कि ''यह हड़ताल उन कुछ थोड़े से लोगों का षड्यन्त्र है जो सरकार को उलट देना चाहते हैं।'' वास्तव में बात ऐसी नहीं है। मजदूर लोग फिलहाल अपनी दीन-हीन दशा का सुधार करना चाहते हैं। उनके लिए वर्तमान आर्थिक और सामाजिक विषमता असहय है। परन्तु जब मि. लायड जार्ज उनकी हड़तालों को 'षड्यंत्र' के नाम से पुकार सकते हैं तो यदि वे भी यह सोचने लग जायें कि मि. लायड जार्ज भी 40 शिलिंग प्रति सप्ताह लेकर इंग्लैण्ड की प्राइम मिनिस्टरी किया करें तो क्या बेजा है। बोल्शेविज्म तो यही कहता है कि यदि मिसेज पेंकहार्स्ट का कहना गलत नहीं है तो मोशिये लेनिन भी रूसी मजदूरों की भांति 40 शिलिंग ही के लगभग प्रति सप्ताह पाते होंगे। हमारा विश्वास है कि, मि. लायड जार्ज इस समझौते पर राजी नहीं होंगे और इसीलिए इंग्लैण्ड से, अथवा उन देशों में जहां की सरकारें स्वच्छन्द हैं, सामाजिक क्रान्ति मिट नहीं सकती और मजदूर लोग यानी गरीब जनता उद्देश्य-सिद्धि की अन्तिम परिधि तक लड़ती जायेगी।

मि. लायड जार्ज सरीखे लोगों और गरीब जनता के विचारों में बहुत बड़ा अन्तर है जिसे वे 'बोल्शेविज्म' समझते हैं, और जिसे वे 'षड्यन्त्र' समझते हैं, असल में वह लोकसत्ता के स्थापन करने की एक सीढ़ी है।।

●

भूमण्डलीकरण मॉडल का मतलब है असमान विकास....

(पेज 16 का शेष)

पूंजी संचय के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध था।

और पूंजी का भारी बहिर्प्रवाह बाद में औद्योगीकरण में शामिल होने वालों के लिए हमेशा लाभदायक ही नहीं होता था। ऐसे बहिर्प्रवाहों से होने वाली हानियां, जिनके बारे में **एडम स्मिथ** और **डेविड रिकार्डो** पहले ही संकेत कर चुके थे, जर्मनी और फ्रांस के नीति-निर्माताओं की चिन्ता का विषय बनने लगी थीं, और उन्होंने ऐसे प्रवाहों को हतोत्साहित करने के साथ-साथ उन्हें निर्यात की फरमाइशों के साथ दृढ़ता के साथ सम्बद्ध करने की कोशिश की थी।

सट्टाबाजारी पूंजी-प्रवाहों के बारे में कुछ सामयिक चिन्ताएं प्रकट करते हुए ये दोनों लेखक इस बात का उल्लेख करते हैं कि 1880 के दशक के अंत में, अर्जेण्टीना में, व्यापार और वित्त के तीव्र उदारीकरण ने एक अपेक्षाकृत अधिक संतुलित और टिकाऊ विकास-पथ को अस्तव्यस्त कर दिया। 1860 और 1870 के दशकों को राज्य-निर्माणकारी शुरुआती अवधि ने, घरेलू राजनीतिक दबाव के अन्तर्गत **अहस्तक्षेप** की विचारधारा का रास्ता खोला, जिसकी बदौलत पूंजी के अन्तर्प्रवाहों में बेतहाशा वृद्धि जरूर हुई, परन्तु यह बड़े पैमाने पर सट्टाबाजारी में, और खासतौर से स्थायी भू-सम्पत्तियों में निवेश करने में लगी। इसके नतीजे के तौर पर यूरोप में एक हल्का सा ही बैंकिंग संकट फूटा कि **बेरिंग ब्रदर्स** का पतन हो गया। लेकिन अर्जेण्टीना में तो संयम के उपायों, गिरती वास्तविक मजदूरियों और राजकीय उद्यमों की विदेशी निवेशकों के हाथों बिक्री ने विकास की गति को ही नष्ट कर दिया और इसके नकारात्मक प्रभावों की गाज उस क्षेत्र की दूसरी अर्थव्यवस्थाओं पर भी गिरी।

('मेनस्ट्रीम' **13 जुलाई 1996 से साभार**)

सौन्दर्यशास्त्र का मार्क्सवादी परिदृश्य

(पृष्ठ 25 का शेष)

परमोत्कर्ष'' देखने की जो राय दी थी वह आज भी हमारे लिए उतनी ही प्रासंगिक है। यह सुखद है कि आज के लगभग सभी महत्वपूर्ण कवि-लेखक अपने समय की ''हाइपर-रियलिटी'' से पूरी तरह वाकिफ हैं। ब्रेख्त की शब्दावली में कहें तो वे अंधकार के युग में भी अंधकार के बारे में कविताएं लिख रहे हैं। इस स्रोत सामग्री से ही मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र को अपने भावी विकास के लिए ऊर्जा प्राप्त हो सकती है। इससे कटकर यदि कोई सौन्दर्यशास्त्र विकसित होता है तो वह ब्रेख्त के शब्दों में कालान्तर में ''उत्पादन का शत्रु'' ही सिद्ध होगा, उसकी भूमिका सृजन-विरोधी होगी। ●

''मानव ने अपनी वर्तमान स्थिति अपनी संस्कृति के माध्यम से प्राप्त की है। मनुष्य और संस्कृति वास्तव में एक संयोग है। संस्कृति के बिना किसी भी स्तर पर मनुष्य की कल्पना नहीं की जा सकती। और मनुष्य से अलग संस्कृति नाम की कोई चीज नहीं है।''

●

ग्राहम क्लार्क

लेनिन के जन्मदिवस (22 अप्रैल) के अवसर पर

''हमारे सामने दो मुख्य काम है जो इस युग के बुनियादी काम है। एक तो राज्य की मशीनरी को फिर से संगठित करने का काम। यह मशीनरी, जिसे पूरा का पूरा पिछले युग से हमने हस्तांतरित किया था, एकदम निकम्मी है। संघर्ष के पिछले पांच वर्षों में उसका आमूल रूप से पुनर्गठन हमने नही किया है, और न हम ऐसा कर ही सकते थे। हमारा दूसरा काम यह है कि हम किसानों के बीच शैक्षणिक काम को संगठित करें। और किसानों के बीच इस शैक्षणिक कार्य को संगठित करने के पीछे हमारा आर्थिक उद्देश्य यह है कि उन्हें सहकारी समितियों में संगठित करें। संपूर्ण किसान वर्ग यदि सहकारी समितियों में संगठित हो गया होता तो अबतक हम अपने दोनों पैरों को मजबूती से समाजवाद की भूमि पर रखकर खड़े हो गये होते। परन्तु संपूर्ण किसान वर्ग को सहकारी समितियों में संगठित करने की पूर्वशर्त यह है कि उनके सांस्कृतिक स्तर को ऊंचा उठाया जाय (खास तौर पर किसानों के सांस्कृतिक स्तर को, क्योंकि वही जनता का विशालतम भाग है)। पर यह काम ऐसा है जिसे एक सांस्कृतिक क्रान्ति के बिना नहीं पूरा किया जा सकता।

हमारे विरोधी बारम्बार हमसे यह कहते आये है कि अपर्याप्त रूप से सुसंस्कृत एक देश में समाजवाद की स्थापना का बीड़ा उठाकर हमने अत्यन्त दु:स्साहसिक काम किया है परन्तु वे गलतफहमी में इसलिए पड़ गये है कि अपने काम को हमने सिद्धान्त द्वारा (सभी प्रकार के विद्याडम्बरियों के सिद्धान्त द्वारा) बतलाये गये रास्ते के विपरीत, उसकी उल्टी दिशा से शुरू किया था। हमारे देश में राजनीतिक और सामाजिक क्रान्ति, सांस्कृतिक क्रान्ति से पहले ही हो गयी थी। उस सांस्कृतिक क्रान्ति से जिसे कि हमें अब पूरा करना है।

यह सांस्कृतिक क्रान्ति हो जायेगी तो हमारा देश पूरे तौर से एक समाजवादी देश में परिवर्तित हो जायेगा -- यह क्रान्ति इसके लिए काफी होगी किन्तु इस क्रान्ति के रास्ते में शुद्ध रूप से सांस्कृतिक (क्योंकि हम निरक्षर हैं) तथा भौतिक किस्म की भारी कठिनाइयां है (क्योंकि सुसंस्कृत होने के लिए आवश्यक है कि हम उत्पादन के भौतिक साधनों के विकास के एक निश्चित स्तर तक पहुंच जायें, एक निश्चित भौतिक आधार की स्थापना कर लें)।

● **लेनिन** (सहकारिता, 6 जनवरी 1923, सम्पूर्ण ग्रंथावली, खण्ड-33, पृ. 467-751)

अंधकार को क्यों धिक्कारें
अच्छा है एक दीप जलाएँ
एक एक भी अगर पढ़ाएँ
सारे अनपढ़ पढ़ लिख जाएँ

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन